'अनुरागरत्न' क्या है ?

कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ:—

श्री स्वामी नित्यानन्दजी महाराज

मैं सर्वसाधारण से, विशेषतया विद्या-रसिक, काव्यकलाप-कुसुम-मधुकरों से सानुनय साग्रह निवेदन करता हूँ कि वे कृपया एक बार इस 'अनुराग रत्न' को अपने शिरोमुकुट, कण्ठ वा हृदय में धारण कर सुभूषित हों। अनुराग-रत्न को एक बार अपनाइए, फिर आप ही अपनाये जायँगे। मुझे आद्योपान्त अनुराग-रत्न पढ़कर जो परमानन्द प्राप्त हुआ, वह वर्णनातीत है।

पंजाब-केसरी श्री लाला लाजपतरायजी

अनुराग-रत्न की कविताएँ बहुत सुन्दर हैं।

अमरशहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

अनुराग-रत्न पढ़कर बड़ा आनन्द आया। शब्दों का सन्निवेश बहुत अच्छा हुआ है।

श्री महात्मा हंसराजजी, भूतपूर्व प्रिन्सिपल
डी ए वी कालेज लाहौर

"मैंने अनुराग-रत्न पढ़ा। कविता बहुत सुन्दर और अद्भुत है।

महात्मा श्री नारायणस्वामीजी प्रधान सार्वदेशिक सभा

"अनुराग-रत्न शुद्ध कविता का भंडार है। विविध विषयों पर शुद्ध और सरल कविता के नियम का आस्वादन करना हो तो अनुराग-रत्न हाथ में लो। इसमें छन्दों की भावाभिव्यक्ति तथा माधुर्य के अनूठे उदाहरण हैं।

म म श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल एम ए
(आक्सफोर्ड) बैरिस्टर-एट-ला

शंकरजी नई पद्य-रचना के मूल आचार्यों में हैं। वे पुरानी और नई कविता के बीच सेतु समान हैं। अनुराग रत्न पढ़ने से कविता की मधुरिमाँ मन और स्मृति को पकड़कर बीच रीतिकाल के पास खींच ले जाती हैं। छन्दों की मधुरता से थकान भी भूल जाती है। छन्द के विषय—भक्ति, वैराग्य समाज सुधार धर्म सुधार आदि हैं। शंकरजी ने अनुराग-रत्न द्वारा सहृदयों को वेदपाठी के पवित्र मन्त्रों की तरह सुना कर देश को कृतार्थ किया है।

साहित्य-महारथी श्री प० पद्मसिंहजी शर्मा

निस्सन्देह अनुराग-रत्न एक अनर्घ रत्न है, जो हिंदी साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। जिस दृष्टि से देखिए, हिन्दी भाषा में एक आश्चर्य काव्य है। शङ्करजी छन्द शास्त्र के अद्वितीय आचार्य हैं। अलङ्कारों की अधिकता, रस और भाव की बहुलता, विषय वर्णन की विचित्रता, चमत्कार की चारुता आदि काव्य अंगों से अनुराग-रत्न देदीप्यमान है। अनुराग-रत्न कीकितनी ही अनूठी कविताओं को पढ़ कर—'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि' की कहावत चरितार्थ हो जाती है। निस्स न्देह इसे नवनवोन्मेषशालिनी कवि प्रतिभा का चतुरस्त्र विकास समझना चाहिए। अनुराग रत्न के विषय में कुछ अधिक कहना मिट्टी के तेल की बत्ती से रत्न-राशि की नीराजना (आरती) करना है।

'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक
अमरशहीद श्रीगणेश शङ्कर विद्यार्थी

कवि शङ्करजी में जबरदस्त मौलिकता है। अनुराग-रत्न में जहाँ उन्होंने अपने भाव प्रकट किये हैं, वहाँ उनके शब्दों का विद्युद्वेग और उनकी प्रतिभा देखते ही बन पड़ती है।

आचार्य श्री प० महावीर प्रसाद द्विवेदी

अनुराग-रत्न के पद्य प्रायः सभी सरस और मनोरञ्जक हैं। शिक्षा और सदुपदेश भी है। भाषा बोलचाल की होने से खूब सरल है, यह इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा गुण है।

सम्पादकाचार्य श्री पं० रुद्रदत्त शर्मा

"शङ्करजी प्राचीन और अर्वाचीन काव्य-कलाओं को समन्वित करने में ऐसी शक्ति रखते हैं। काव्य-प्रिय लोग अनुराग-रत्न को पढ़कर फिर आधुनिक अन्य कुकाव्यों को आपही बोझ समझने लगेंगे। क्योंकि—

पीत्वा पयः शशिकर द्युति दुग्ध सिन्धोः।
क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ॥

श्री पं० रामजीलाल शर्मा प्रधान मंत्री भारतवर्षीय
हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग

"अनुराग-रत्न हिन्दी पद्य-साहित्य में अनोखी वस्तु है। शङ्करजी की रसीली कविता की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। एक-एक कवित्त को बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं भरता। शङ्करजी की रचना-चातुरी का यह ग्रन्थ बहुत ही उत्कृष्ट नमूना है "।

श्री स्वा० परमानन्दजी महाराज (आगरा)

महाकवि शङ्कर-रचित अनुराग-रत्न विविध विषय-विभूषित विशुद्ध कविता का अति उत्तम ग्रन्थ है। इसको पढ़ने और गाने में अद्भुत आनन्द उपलब्ध होता है।

श्री प० घासीरामजी एम० ए०, एडवोकेट

अनुराग रत्न प्रत्येक कविता-प्रेमी को उपादेय है। प्राय सभी कविताएँ सरस और मधुर हैं। इस ग्रन्थ की कविता में सबसे बड़ा गुण पद-लालित्य, माधुर्य और शब्द-चातुर्य है।

राज्यमित्र श्री प० आत्मारामजी (अमृतसरी)

अनुराग-रत्न की कविता उत्तम, प्रभावशाली और युक्ति-पूर्ण हैं।

रायसाहब श्रीमदनमोहन सेठ एम० ए०, सबजज, प्रधान, आ० प्र० सभा, संयुक्तप्रान्त

अनुराग रत्न रत्न ही है। इसकी कविता मधुर, सरस, उत्कृष्ट और सामाजिक सिद्धान्त-सम्पन्न है। इस ग्रन्थ-रत्न को साहित्य में स्थायी स्थान मिलेगा, इसमें तनक भी संदेह नहीं।

वेदतीर्थ श्री प० नरदेव शास्त्री

अनुराग रत्न शङ्करजी की कृति का उत्कृष्ट नमूना है। हिन्दी में कवि शङ्कर को भवभूति की उपमा दे सकते हैं। उनकी कविता में पाण्डित्य और वैदग्ध्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

साहित्य-रत्न श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' एम ए, एल-एल बी,
आचार्य, हिन्दी साहित्य-विद्यालय, आगरा

'अनुराग रत्न' वास्तव में अनुराग-रत्न है। वह सहृदयों के हृदयों का हार बनकर चिरकाल तक जगमगाता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। अनुराग-रत्न में मुर्दा दिलों को जिन्दा करने की संजीवनी शक्ति है। साथ ही अध्यात्म धारा का जो स्रोत उसमें प्रवाहित हुआ है, वह नितान्त आस्वादनीय और कवि की रहस्यात्मिका वृत्तिका द्योतक है। ”

सुप्रसिद्ध विद्वान और काव्य-मर्मज्ञ
साहित्याचार्य श्री प० शालग्रामजी शास्त्री

शङ्करजी का अनुराग-रत्न सर्वाङ्ग सुन्दर काव्य है। कविता का तो कहना ही क्या है, एक से एक बढ़कर भावपूर्ण है। जो लोग छन्द-शास्त्र में निपुण हैं, उनके विनोद का इसमें बहुत कुछ सामान है। यों तो शङ्करजी की रचना में अनेक रसों और भावों की छटा है, परन्तु करुण और हास्यरस की पुष्टि अत्यन्त सुन्दर हुई है। हास्यपूर्ण अन्योक्तिमय उपदेश देने में आपकी लेखनी बड़ी निपुण है। यमक और अनुप्रासों के हुरदंग में प्रसाद गुण को अछूता रखना आपही के विशाल शब्द-भण्डार का काम है। अर्थ और सौन्दर्य की शुद्धि भी कुछ कम नहीं है। विचार भी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक देश आचार विषयक, नवीन तथा प्राचीन सभी ढंग के कविता के रंग में बड़े ही कौशल से रँगकर अंकित

सिद्ध है। पं० नाथूरामशङ्कर शर्मा हिन्दी के एक अनुपम रत्न हैं। यदि आप कविता के युग में उत्पन्न हुए होते तो निस्सन्देह किसी राज-सभा के रत्न बनते। इस काव्य के विषय में हमारी ईश्वर से प्रार्थना है:—

> विशोकतम विचित्र वर्ण महिम प्राप्तः प्रसाद भवो
> [illegible] गुण [illegible] सार्वभरः।
> चिरं चतुरि, वापि [illegible] सतो
> [illegible] विधिहन्तु [illegible]॥

नम्र निवेदन

'अनुरागरत्न' का यह द्वितीय संस्करण आज पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। स्वर्गीय महाकवि शङ्कर के आदेशानुसार इस संस्करण में, कुछ कविताएँ घटा-बढ़ा दी गई हैं, जिससे पुस्तक की उपादेयता में और भी अधिक वृद्धि हो गई है। विद्वन्मण्डली ने 'अनुरागरत्न' के प्रथम संस्करण की मुक्तकण्ठ से सराहना की। सहृदय-समाज तथा काव्य-मर्मज्ञों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर अपनी गुणग्राहकता का प्रशस्त परिचय दिया। प्रायः सभी प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रों ने 'अनुरागरत्न' की दिल खोल कर तारीफ़ की। इन सब सम्मतियों को विस्तार-पूर्वक छापना कठिन कार्य है, क्योंकि इसी आकार के पचास पृष्ठों से कम पर वे न आवेंगी। फिर भी दस-पाँच प्रसिद्ध विद्वानों और नेताओं की सम्मतियों में से कुछ चुने हुए शब्द, ग्रन्थ के प्रारम्भ में उद्धृत किए जाते हैं। इनसे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि वास्तव में—'अनुरागरत्न' है क्या?

महाकवि शङ्कर को परलोक-यात्रा किए ४ वर्ष हो गए, परन्तु उनकी विस्तृत जीवनी अब तक प्रकाशित न हो सकी और न शङ्करजी की सैकड़ों अनूठी और अछूती कविताएँ ही पुस्तकाकार में पाठकों तक पहुँच सकीं। इस का हमें खेद

है—विशेष कर इसलिए कि शङ्करजी की जीवनी तथा उन के अप्रकाशित काव्य पढ़ने के लिए कविता-प्रेमियों के पचासों पत्र प्रतिमास 'शङ्कर-सदन' में आते रहते हैं, जिनका उत्तर हमें 'नकार' में देना पड़ता है। परन्तु अब शङ्करजी की विस्तृत जीवनी और उनकी अप्रकाशित कवितायें प्रकाशित करने की पूरी चेष्टा की जा रही है। आशा है परम प्रभु परमात्मा की अपार अनुकम्पा से दोनों कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होंगे और सहृदय सज्जनों को अधिक दिनों तक प्रतीक्षा में न रहना पड़ेगा।

'अनुरागरत्न' के पहले संस्करण का मूल्य १) था, परन्तु अब १।) कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि अब की बार पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १ के लगभग बढ़ गई है, साथ ही कपड़े की बँधी सुन्दर जिल्द है, और बढ़िया आर्ट पेपर पर छपे दो चित्र दिए गए हैं।

आशा है सहृदय-समाज इस संस्करण का भी उत्साह पूर्वक स्वागत करता हुआ, उसे बड़े प्रेम से अपनावेगा। एवमस्तु '

हरिशङ्कर शर्मा

सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

दो शब्द

हिन्दी के रससिद्ध सुप्रसिद्ध महाकवि श्रीमान् पण्डित नाथूरामजी "शकर" शर्मा की अलौकिक कविताओं के अपूर्व सग्रह, "अनुरागरत्न" की यथार्थ परीक्षा, इन कतिपय पक्तियों में नहीं हो सकती, इसके लिये पृथक् निबन्ध की ज़रूरत है। वास्तव में देखा जाय तो "कविता" समालोचना की अपेक्षा नहीं रखती, वह अपने असाधारण गुणों से सहृदय सज्जनों के हृदय पर स्वय और सहसा अधिकार कर लेती है। "कविता" के विषय में किसी सस्कृत कवि की यह उक्ति अक्षरश सत्य है —

"ज्योत्स्नेव हृदयानन्द सुरेव मदकारणम्।
प्रभुतेव समाकृष्टलोका कवयितु कृति ॥"

अर्थात् सत्कवि की कविता, चाँदनी (ज्योत्स्ना) की तरह हृदय को आनन्द देने वाली, 'सुरा' की तरह मस्त कर देने वाली और प्रभुता (हुकूमत) की तरह मनुष्यों को बलात अपनी ओर खींचने वाली, एक जबरदस्त चीज़ है।

सो चाँदनी, सुरा या हुकूमत अपना असर करने में किसी समालोचना या गुणपरिचय की अपेक्षा नहीं रखते। इनके

हीरा बख्शा कान को जिसने, मुश्क दिया हैवान को जिसने।
जुगनूँ को बिजली की चमक दी, जर्रे को कुन्दन की दमक दी।"

उसी अघटन घटना पटीयान् भगवान् से प्रार्थना है कि वह अपनी इसी अचिन्त्य और अलौकिक शक्ति को काम में लाकर, हमारे गुण-ग्रहण-पराङ्मुख, साहित्य-विद्वेपी, हृदयशून्य समाज में गुणग्राहकता, साहित्यानुराग और सहृदयता का सचार करे। पत्थर दिलों को मोम करदे, अन्धों को आँखें दे, "सब धान बारह पसेरी" समझने वाले "समदर्शियों" को विवेक-बुद्धि दे जिससे वे कपूर और कपास में फर्क समझ सकें, "रत्न" और काच मे भेद कर सकें, रत्न को कण्ठ में और काच को कूडे पर जगह दें। महनीय कीर्ति गुणगणालकृत सत्कवियों का समादर और अनधिकार चेष्टा करने वाले साहित्य-हत्यारे तुक्कड़ों का निरादर करना सीखें।

नि सदेह "अनुरागरत्न" आर्य-साहित्य में एक अनर्घ रत्न है। जिस दृष्टि से देखिए, हिन्दी भाषा में यह एक आश्चर्य-काव्य है। शकरजी छन्द शास्त्र के अद्वितीय आचार्य हैं, आपने हिन्दी में अनेक नये छन्दों को जन्म दिया है, कई पुराने छन्दों में नवीनता उत्पन्न की है, मात्रिक, वर्णिक, मुक्तक आदि प्रत्येक प्रकार की पद्य-रचना में मात्रा, अक्षर, गिनती, खण्ड, विराम ये सब जिसमें तुल्य आवें, ऐसी कोई पुस्तक कविता विषयक (जहाँ तक मालूम है) आज तक प्रकाशित नहीं हुई थी। सभव है, अपनी दो-एक कविताओं मे इस महा कठिन नियम को किसी

कविने निबाहा हो, परन्तु अनेक विध छन्द-पूरित सम्पूर्ण पुस्तक में आद्योपान्त यह नियम नहीं देखा गया। 'अनुरागरत्न' इस विषय की पहली पुस्तक है। शंकरजी की जो कविताएँ, सरस्वती 'परोपकारी' 'भारतोदय' आदि में पूर्व प्रकाशित हो चुकी हैं उन्हें भी आपने इस नियम की शाण पर चढ़ाकर ठीक किया है। इस लिये प्राय: पाठभेद होगया है। इस सरल पावन्दी के सबब कहीं-कहीं काठिन्य हो गया है। जिन्होंने ऐसी कविताओं को पहले रूपमें पढ़ा है, उन्हें परिवर्तित पद खटकते हैं पर इस कठिन दुर्गम घाटी का तै करना शङ्करजी का ही काम था। आज कल जब कि रदीफ और काफिये की बन्दिश से तंग आकर उर्दू के बड़े बड़े कवि भी 'ब्लांक वर्स' (तुकहीन) कविता की ओर झुक रहे हैं हिन्दी कविता में नई बन्दिशें पैदा करके इस सख्ती से साफ निकल जाना तलवार की धार पर चलकर भी पैरों को घायल न होने देने से कुछ कम बात नहीं है। नियम पालन का आपने यहाँ तक ध्यान रक्खा है कि हर एक काफिया श-श, स-स और ष-ष के मेल से मिलाया गया है। 'श' के साथ 'ष' या 'स' का मेल नहीं किया गया जैसा कि प्राय: हिन्दी के कवि कर देते हैं।

अनुरागरत्न में प्रत्येक दोहा ८-८ अक्षरों के विश्राम से अपने चरणों में १३-११ मात्राओं का योग दिखाता है। और प्रत्येक सोरठा ८-८ अक्षरों के विराम से अपने पदों में ११-१३ मात्राओं का योग रखता है। प्रत्येक मात्रिक छन्द अपने चरणों में 'गुरु' 'लघु' तथा अक्षर और मात्राओं की तुल्यता प्रकट करता है। केवल

इतनाही नहीं बल्कि प्रत्येक तुल्य खण्डों पर जो विराम होंगे, वे भी अक्षरों की तथा गुरु लघु आदि की गणना मे तुल्य होंगे। कई कविताएँ ऐसी हैं जिनमे विराम और अन्तर पर क़ाफ़िये मिलाये गये हैं। इसके उदाहरण के लिये "मेरा महत्त्व" (पृ० २५४) देखिये। मुक्तक छन्दों में पूर्व दल तथा पर दल दोनों में गुरु-लघु, यथानियम मिलेगे। जैसे घनाक्षरी के पूर्वदल में १० गुरु ६ लघु और परदल में ९ गुरु ६ लघु रक्खे है। पुराना नियम यह है कि घनाक्षरी के चरण १६-१५ के विश्राम मे हों, गुरु-लघु तुल्य रखने का बन्धन नहीं है। क़व्वाली छन्द को कवि लोग मात्रिक मानकर लिखते हैं, परन्तु अनुरागरत्न में भिखारीदासजी के छन्दोर्णव पिंगल में वर्णित "शुद्धगा वृत्त" के अनुसार इसे लिखा गया है। "चित्र विनीनो' छन्द को श्रीभिखारीदासजी ने मात्रिक छन्द लिखा है। परन्तु अनुरागरत्न में इसी को (चित्र विनीनी को) वर्णिक मानकर "कलाधर वृत्त" नाम से लिखा गया है, जैसे पृ (५) पर "चमके अनुरागरत्न मेरा" और १९८ पृष्ठ पर "हमारा अव पतन"। यह वही बहर है, जिसमें उर्दू के महाकवि पण्डित दयानारायण (नसीम) ने सुप्रसिद्ध "गुलबकावली" लिखी है।

कई बहरें जो केवल उर्दू मे ही आती हैं, जिनका प्रयोग अब तक हिन्दी में नहीं हुआ था, शङ्करजी ने उन्हे नये नामों मे अपनी कविता में आश्रय दिया है। यथा 'मुसद्दस' का नाम "मिलिन्द पाद" "गजल" का नाम "राजगीत" इन्हीं की ईजाद है। "सुमना" और "उग्रदण्डक" ये भी नये नाम हैं। "सवैयो"

को भी आपने कई प्रकार से खूब सजाया है, जैसे 'द्विज वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें' इत्यादि। अधिक क्या केवल पिङ्गल की दृष्टि से देखा जाय तो "अनुरागरत्न" एक अपूर्व रत्न है जो हिन्दी-साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। अलङ्कारों की अधिकता, रस और भाव की बहुलता विषय-वर्णन की विचित्रता चमत्कार की चारुता आदि काव्य-गुणों से भी "अनुरागरत्न" देदीप्यमान है। "अनुरागरत्न" का प्रत्येक पद्य इसका उदाहरण है। कई कविताएँ तो एक दम निराली और अनूठी हैं। यथा "नैसर्गिक शिक्षा" 'पावस-पञ्चाशिका" 'वसन्त-विकास" आदिमें जिस सर्वथा नवीन रीति से अलौकिक और अनूटे भावों का भरा है उसे नवनवोन्मेषशालिनी कवि प्रतिभा का अनुपम विकास समझना चाहिए। इन कविताओं को पढ़कर "जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि" इस कहावत की सचाई का उदाहरण मिल जाता है। गीतों में जिस चातुर्य से वेदान्त-विचारों को और अध्यात्म भावों को सूक्ष्म रीति से दरसाया गया है, उसका पता 'अनुरागरत्न' के प्रकाश से ही पाइयेगा।

'ब्रह्म-विवेकाष्टक' में जिस पाण्डित्य से गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को गूँथा गया है, उसे देखकर एक सहृदय अपितार्किक दार्शनिक विद्वान् दंग रह गये वह बार-बार उन पद्यों को पढ़ते थे और प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। 'रामगीता' में जिस खूबी से रामायण का सार निकालकर सागर को गागर में भरा है और साथ ही साथ प्रत्येक घटना से कुछ न कुछ शिक्षा

ग्रहण करने का उपदेश (प्रत्येकपद्य के अन्तिम पदों द्वारा) दिया है, वह कवि-लीला का अच्छा परिचायक है। "अनुराग-रत्न" के विषय में कुछ अधिक कहना, मिट्टी के तेल की बत्तीसे रत्न-राशिकी नीराजना (आरती) करना है!! शङ्करजी के शब्दों में प्रार्थना करके यह संक्षिप्त विवेचना समाप्त की जाती है। "परमात्मन्! इस 'अनुरागरत्न' को अच्छे गवैया गावें, अभिज्ञ श्रोता सुनें, विचारशील पुरुष पढ़ें और समझें यही प्रार्थना है।"

एक भारी भूल—मनुष्य का कोई कार्य सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता, कोई न कोई भूल हो ही जाती है। "अनुरागरत्न" भी इससे नहीं बच सका। जहाँ यह और सब प्रकार से प्रशंसनीय है, वहाँ इसकी एक बात खटकने वाली और आक्षेप योग्य है, वह इसका "समर्पण" है। जिस व्यक्ति को यह रत्न समर्पित हुआ है, वह किसी प्रकार भी इसका पात्र नहीं है। यदि यह अनर्घ रत्न किसी श्रीमान् को समर्पित होता तो कवि को इष्टलाभ सुलभ था। यदि किसी देवता या महापुरुष के नाम समर्पण होता तो पुण्य-प्राप्ति और कीर्ति-लाभ इसका फल होता। इस समर्पण में "समर्पयितुर्वचनीयता" के अतिरिक्त और भी कुछ लाभ होगा, सो समझ में नहीं आता। अथवा कवि शङ्करजी का यह समर्पण "आशुतोष" और "वामदेव" नामधारी शङ्कर भगवान की विचित्र लीलाओं के ढंग का है, जिस प्रकार (पौराणिक) भोलानाथ (शङ्कर) मालती-माल्य का निरादर

करके धत्तूर पुष्प को धारण करते हैं, मुक्ताहार के स्थान में नर-कपाल से कण्ठ को विभूषित करते अमृत छोड़ विष का पान करते और कैलासोपवन का परित्याग करके श्मशान में आसन जमाते हैं उसी प्रकार अनेक गुणाढ्य श्रीमानों विविध उपाधिधारी विद्वानों और दिगन्त विश्रुत कीर्ति समाज प्रभु श्रीवरों को छोड़कर, एक अगण्य और अधन्य सामान्य जन को "अनुरागरत्न" का समर्पण हुआ है। क्यों न हो आखिर 'शङ्कर' के नाम-साम्य के साथ कुछ तो शील-साम्य भी चाहिये। अन्यथा—

अयं (इ) मूढमतिर्मन्दो गुणैः सर्वैर्बहिष्कृतः।
न सर्वं सुकृतिमाप्नोति नामरोऽमरः परः॥"

महाविद्यालय
जबलपुर

पद्मसिंहशर्म्मा

❀ ॐ तत्सत् ❀

महाकवि शङ्कर

का

काव्य

यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसा,
यच्चार्थतो गौरवम् ।
तच्चेदस्ति तदेव चास्तु गमक,
पाण्डित्य वैदग्ध्ययो ॥

—मालतीमाधव

न्दी में हम कवि शकर को भवभूति की उपमा दे सकते हैं, क्योंकि भवभूति की कृति के सदृश शकरजी के काव्य में प्रौढित्व है, वाणी की उदारता अर्थात् शब्द-प्रयोग की कुशलता है। शब्द तो कविजी के आगे हाथ जोडे खड़े रहते हैं। उन शब्दों का सौभाग्य है, जो इनकी काव्य-माला में गूँथे गये हैं। शकरजी के काव्य में अर्थ-गौरव है, इसीलिए कवि शकर की प्रत्येक कविता में उनका पाण्डित्य और वैदग्ध्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अनुराग-रत्न शकरजी की कृति का उत्कृष्ट नमूना है।

यदि यह काव्य एक ही प्रधान विषय को लेकर होता अथवा बनाया जाता तो क्या ही कहना था। किन्तु हम कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ के विविध विषय-विभूषित होने पर भी इसका महत्व तो एक ही है और वह है-भारतवर्ष को स्व-स्वरूप का यथार्थ बोध कराकर उसको कर्तव्य प्रबोधन द्वारा उच्च वातावरण में लेजाना। इसीलिये अनुराग-रत्न में कविजी के सब प्रकार के विचार प्राप्त होते हैं। कविजी ने अनुराग-रत्न क्या बनाया अपना हृदय बाहर निकालकर जनता के सामने रखदिया है। इसी हृदय से कवि शंकर की कविता की आलोचना अथवा प्रत्यालोचना अथवा समालोचना होनी चाहिये।

कहीं भारतवर्ष की दुर्दशा देखकर वे इतना कटु बोले हैं कि लोग घबरा जाते हैं, कहीं ईश्वर, जीव प्रकृति माया द्वैताद्वैत जैसे गहन विषयों में इतने गहरे चले जाते हैं कि वे उच्चकोटि के दर्शनकारों की पंक्ति में जा बैठते हैं, और कहते हैं कि मेरी बात को दर्शनों की बातों से मिलाकर तो देखो। कहीं उपनिषत्कारों की रहस्य-विद्या का आनन्द लूटते हुए इतने मग्न हो जाते हैं कि इस नश्वर संसार की ओर आँख तक नहीं। कहीं शृङ्गार रस को भी भक्तिरस में परिणत करके उसे ईश्वर की गोद में बैठा देते हैं। कहीं दयावीर का अवतार बनजाते हैं, कहीं रणवीर होकर वीर बाँकुरे हो जाते हैं, कहीं धर्मवीर होकर शान्ति की पराकाष्ठा कर देते हैं कहीं पाखण्डियों की खबर लेते हैं। कहीं भारतीय समाज का मर्म चित्र दिखलाकर करुणारस का प्रवाह

घहा देते हैं, कहीं तत्त्ववेत्ता की भाँति भारतीय अवनति के कारणों का ऊहापोह करते करते यथार्थ ज्ञान द्वारा भारतीय आत्मा की आँखों में तीव्र अञ्जन डालने का सफल प्रयत्न करते हैं।

हम केवल उनके अनुराग-रत्न पर ही दृष्टि देकर यह नहीं लिख रहे, अपितु उनके अप्रकाशित काव्य के आधार पर भी लिख रहे हैं। शङ्करजी का अप्रकाशित काव्य कब प्रकाश में आवेगा यह तो ईश्वर ही जाने, किन्तु इतना तो हम कह सकते हैं, और निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यदि वह प्रकाशित हो जाय तो हिन्दी-जगत् में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाय।

धार्मिक क्रान्ति में कवि शङ्कर महर्षि दयानन्द के अनन्य अनुयायी थे, और राजनीति में राष्ट्र-सूत्रधार लोकमान्य तिलक के। शङ्करजी ने सब प्रकार की काव्य-रचना की है—अर्थात धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक। कहीं आपकी कविता में होली के रग में विलायती मिस भोरी के साथ ऐसी सुन्दर होली खेली गई है, और उस कविता में ऐसे कूट भाव भरे हैं कि ऐसी भावभरित कविता आजतक किसी ने नहीं लिखी। 'बम भारत का रस भङ्ग हुआ' इस टाइप की कविताएँ साधारण से साधारण जन के हृदय में पहले तो उद्वेग और फिर उत्साह भरने में समर्थ हैं। 'किसी से कभी न हारूँगा' शीर्षक कविता समाज में उच्छृङ्खल रूप से फिरने वाले और समाज को बदनाम करने वाले मिथ्याभिमानी जनों की खासी पोल है। 'इस अन्धेर

में रे, अच्छी चाकाकी चमकाओ' इस प्रकार के वस्तुस्थिति द्योतक पद्य परिछिन्नमन्य दुरभिमानी उपदेशकों की आँखों में अच्छा खासा देव ममीरे का सुरमा है। इसी प्रकार यदि प्रत्येक प्रकरण पर दृष्टि डालें तो कवि शंकर के काव्य में उग्र और सौम्य करुणा और कठोर, दया और वीर इत्यादि परस्पर विरोधी किन्तु एक ही भावों के द्योतक पद्य मिलेंगे।

जब कोई कवि काव्य बनाने बैठता है—'बैठता है' यह प्रयोग प्रतिभाशाली जन्मसिद्ध कवियों के सम्बन्ध में नहीं हो सकता इधर-उधर से बलात् अक्षरों और शब्दों को खींच कर, उनको किसी प्रकार कविता के साँचे में डालने वाले बड़े खास कवियों पर ही लागू होता है, प्रतिभाशाली कवि तो चलते-फिरते उठते-बैठते खाते-पीते सोते-जागते हुए कवितामय ही बन जाता है,—तब उसकी दशा, उस समय में गीतोपवर्णित 'स्थितप्रज्ञ की-सी हो जाती है।

कवि शङ्कर जन्मसिद्ध प्रतिभाशाली कवि थे । उन्होंने अपनी कविता प्रायः 'यश के लिए की द्रव्य 'अर्थ' के लिए नहीं। उन्होंने अपना काव्य संसार की गन्दगी को मिटाकर उसका स्वच्छ वातावरण में लाने के लिए बनाया। उन्होंने अपने काव्य की रचना आपात कटु किन्तु परिणाम में अमृत रूप धारण करने वाले उपदेशों के निमित्त की। जो केवल 'अर्थ' की दृष्टि से काव्य रचते हैं, वे उनकी अपेक्षा निम्न कोटि के हैं जो 'यश' के लिए रचते हैं। सब से उत्तम कोटि के कवि वे हैं, जो अपना काव्य इस-

लिए बनाते हैं कि ससार का अज्ञान मिटे, उस का दु ख दूर हो, उस को स्वच्छ रूप का ज्ञान हो जाय, ससार में प्रच्छन्न अथवा प्रकट रूप में फैला हुआ 'अशिव' नष्ट हो जाय, राष्ट्र में स्फूर्त्ति आ जाय, मानव-समाज का कल्याण हो जाय और राष्ट्र का दु:ख, दैन्य, दारिद्रय मिटे। 'यश' तो गौण वस्तु है, 'अर्थ' तो उससे भी गौण है, उसको मुख्य उद्देश्य बनाना उच्चतम कोटि के कवियों का काम नहीं। इस दृष्टि से कविजी को हम उच्चतम कोटि में रखते हैं। इसीलिए हमने ऊपर 'यश' शब्द के साथ 'शुभ्र' शब्द जोड़ा है।

कवि शङ्कर के काव्य को हम भवभूति के काव्य की उपमा दे चुके हैं। उनके काव्य को देखकर हम सस्कृत के उद्भट मुरारिकवि की भी उपमा दे सकते और कहते हैं कि 'मुरारे-स्तृतीय पन्था' अर्थात् कविशकर की कविता 'तीनों लोकों से मथुरा न्यारी' इस कहावत की-सी विचित्र कविता है। हम यह नहीं कह सकते कि उसमें कोई रस शेप रहा हो, यह नहीं कह सकते कि भाव-अनुभाव पूरे न उतरे हों, यह नहीं कह सकते कि मात्रा और वर्ण के विपयमें पूरी-पूरी कड़ाई न दिखाई हो, यह नहीं कह सकते कि उनकी कविता अलङ्कारशास्त्रियों को भी मुग्ध करने वाले अलङ्कारों द्वारा सुभूपित अथवा विभूपित नहीं हुई है। इसमें क्या नहीं है और क्या है इसकी विवेचना कविता-कामिनी-कान्त शकरजी निर्मित काव्योद्यान अथवा उपवन में स्वच्छन्द विचरने वाले कविता-कानन-केसरी

स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे काव्यमर्मज्ञ ही कर सकेंगे—हमारे जैसे 'शुष्क पुष्प' यथारीति अभिरुचिवालों से कुछ भी नहीं कह सकते। हाँ हमने—

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

रूप वेदकाव्य का कुछ रसपान किया है इसीलिए कुछ वैदिक और कुछ लौकिक दृष्टि से हम थोड़ा-बहुत लिख सके हैं। कवि शंकर अनन्त आकाश में अनन्त की ओर स्वच्छन्दता पूर्वक उड़ने वाले प्रतिभाशाली कवि थे। वे क्रान्तदर्शी होने के कारण भूमिपर ही बैठे-बैठे लोक-लोकान्तर को भेदन कर उन के भेद जानने की शक्ति रखते थे।

हम कविजी के परम भक्तों में से एक हैं, इसीलिए यथार्थ गुणदोष निरूपण कर रहे हैं। "कवि शंकर तू यदि शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयङ्कर है" इस कविता में परमात्मा शं स्वरूप 'शंकर' में भी भयङ्करता का आरोप करने वाले कवि शंकर अलक्षित अथवा अज्ञात रूप में अपनी 'शंकरता' और उसमें भी अनुभवित 'भयङ्करता' को स्वयं अपनी लेखनी से लिख गये हैं। उनकी शंकरता सौम्यरूप की द्योतक है, और उनकी भयङ्करता उग्ररूप की व्यञ्जक। शङ्करजी का हृदय पुष्प से भी कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर था इसलिए उनकी कविता में दोनों रंग देखने को मिलते हैं। आर्यजगत में तो उन जैसे वे अकेले ही थे पर राष्ट्रभाषा-जगत् में भी वे अद्वितीय थे। शङ्करजी में कोई कमी थी तो यह यह कि उनका आर्य समाजके शुष्क वाता-

वरण से सम्पर्क होगया था, नहीं तो वे पूरे राष्ट्र-कवि थे। इसी लिए कवि शङ्कर को उनके अनुरूप स्थान पर नहीं बैठाया जा सका, तथापि कवि शकर सर्वोच्च आसनपर बराबर विद्यमान रहेंगे। हमको रह-रह कर केवल यही दुःख है कि सम्पूर्ण आर्यजगत में कविशकर एकमात्र प्रतिभाशाली कवि सम्राट् हुए और आर्यसमाज ने उनके जीवन-काल में भी यथार्थ, रूप से उनकी पूजा नही की। फिर निधनोत्तर आजतक उनका कोई समुचित स्मारक भी नहीं बनाया। परन्तु इससे क्या, महाकवि स्वर्गीय शङ्कर की कविता स्वय उनको अमर बनायेगी। वह किसी दूसरे की अपेक्षा अथवा सहायता के भरोसे थोड़े ही बैठी है।

× × × ×

महाकवि शकर हरदुआगञ्ज मे अपनी शकर-सदन नामक कुटिया में भी प्रासाद का अनुभव करते रहते थे। महाभारत में धर्म के जो आठ प्रकार के मार्ग बतलाये हैं, उनमें 'अलोभ' मुख्य मार्ग है, और महान् पुरुषों का मार्ग है। कवि शकर स्वभाव से ही निर्लोभ थे। एक बार एक महाराजा कविजी को पाँच सहस्र रुपये की थैली भेंट करनेकी इच्छा कर रहे थे, केवल वे चाहते थे कि कविजी अपनी कविताओं में से आर्यसामाजिक गन्ध को निकालकर स्वसग्रह को प्रकाशित करें, किन्तु—

"स्व राशा घयमप्युपार्मितगुरप्रज्ञाभिमानोस्ता।"

की चलती-फिरती मूर्ति इस बात को कब मानती उसने तो तुरन्त स्पष्ट शब्दों में निषेधपरक उत्तर दिया। एक बार दूसरे एक राजा ने संदेश भेजा कि यदि यह अनुराग-रस उनको समर्पण किया जायगा तो वे प्रकाशन का समस्त व्यय देंगे तथा ऊपर से और भी धन भेंट करेंगे किन्तु अक्खड़ कविराज कविता-कामिनी-कान्त कब मानते! कविता का विकास प्रतिभा का विकास दरिद्र की कुटिया में हुआ करता है, सो कवि शंकर की अभिव्यक्तिकारिणी कविता का विकास अथवा उनकी अपूर्व प्रतिभा का विकास अथदरिद्र (धीदरिद्र नहीं) शंकर-भवन नामक कुटिया में हुआ।

'अौवल्पं दरिद्रोऽपि धीदरिद्रो न जीवति'

संसार में अर्थदरिद्र पुरुष राष्ट्र, समुदाय किसी प्रकार जीवित रह सकते हैं पर धीदरिद्र व्यक्ति, समुदाय अथवा राष्ट्र जीवित नहीं रह सकते।

कवि शंकर हरदुआगञ्ज छोड़कर बाहर बहुत कम निकलते थे। वे वैद्य भी उत्तम कोटि के थे किन्तु उनकी वैद्यक भी उपकार का साधन बन गयी थी धनोपार्जन का साधन कभी नहीं बनी। उनके इलाज से सैकड़ों-सहस्रों गरीब रोगी लाभ उठाते थे। वे पीयूषपाणि वैद्य थे। बार बार छह छह पैसे के नुसखे लिखकर बड़े-बड़े रोगों को अच्छा कर देते थे। ऐसे मनस्वी कविराज ने कभी दूसरों के सामने मतिमद के लिये हाथ नहीं फैलाया। अजगर वृत्ति ही रही। ऐसे क्रान्तदर्शी

प्रतिभाशाली, निर्लोभ कवि शङ्कर के गुण-गान कोई कहाँ तक करे।

मैं तो प्राय प्रतिवर्ष शङ्करजी से मिलने हरदुआगज जाता और वहाँ दो-चार दिन ठहरता था। कविजी अपनी तीक्ष्ण वुद्धि के कारण कभी-कभी दर्शन-विपयक ऐसे विचित्र प्रश्न कर वैठते थे कि उत्तर देना भी कठिन हो जाता था। वे अपने काव्य और दर्शनशास्त्र के विचारों में मग्न रहते थे। मैं जब भी जाता तव अन्य विपयों के साथ वे द्वैताद्वैत की चर्चा भी खूब चलाते और प्रतिदिन घण्टों चर्चा रहती थी। एक वार इसी उलझन में मुझे सतरह दिनों के पश्चात् वहाँ से छुटकारा मिला।

शङ्करजी प्रवास-भीरु वड़े थे, उन्हें कहीं जाना आना वहुत नापसन्द था। वड़ी मुशकिल से दो-चार वार साहित्य-सभाओं में सम्मिलित होने वाहर गये होंगे। प्राय प्रतिमास दूर दूर के साहित्य-सेवी सज्जन उनसे मिलने हरदुआगज आते रहते थे। शङ्करजी अतिथि-सत्कार गजव का करते थे, उनका आतिथ्य प्रसिद्ध है। जव लोग विदा होते तो कविजी की आँखों में आँसू छलक आते थे, वे उस समय कण्ठावरोध के कारण कुछ न कह सकते थे—इतनी थी उनमें मोह की मात्रा। उनके इस प्रेम को वही जान सकते हैं, जिन्हें कभी शङ्करजी के आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

कवि शङ्कर अपनी कविता वड़े मधुर कण्ठ से पढते थे। एक तो काव्य की मधुरता दूसरे उन के कण्ठ की मधुरिमा इस प्रकार उनकी माधुरीद्वयी का आनन्द वे ही लूट पाते थे जो हर

हरदुआगंज आकर उनके पास दो चार दिन रहते थे। सबसे अधिक आनन्द साहित्य-कानन-केसरी स्व० पण्डित पद्मसिंह शर्मा लूटते थे क्योंकि 'वक्ता कवि शंकर और श्रोता' पद्मसिंह शर्मा! एक-एक महीना वहीं इन दोनों की काव्य-चर्चा चलती थी।

शङ्करजी की कविता पर प्रसन्न होकर लोगों ने उन्हें घड़ी, पगड़ी दुशाले भेंट किये थे सोने चाँदी के बीसियों पदक दिये थे बड़े-बड़े विद्वानों और विद्वत्समाजों ने उन्हें अनेक उपाधियाँ प्रदान की थीं परन्तु वे उन पर कभी गर्व न करते थे उनकी चर्चा भी न चलाते थे। शंकरजी विनम्रता और निरभिमान की मूर्ति थे।

हाल ही में हम हरदुआगंज गये थे। वहाँ शङ्करजी की बैठक में रामचन्द्र नामक एक प्रज्ञाचक्षु नवयुवक ने कवि शंकर की अनेक अप्रकाशित कवितायें सुनाईं जी भर आया। यहाँ कविजी बैठते थे यहाँ दीवार के साथ सिर टेक कर कविता करते थे, यहाँ सोते थे यहाँ रात को ही उठकर कविता लिखने लगते थे इत्यादि-इत्यादि स्मृतिपुञ्ज जाग्रत् हुआ और मन की गति विचित्र होगई!

उस दिन महाकवि शङ्करजी के पुत्र पिवर हरिशंकर शर्मा की पुत्री चिरञ्जीविनी सौभाग्यवती प्रतिभा के विवाह पर कितना विद्वज्जन-संमर्द हुआ था! उस अवसर पर एकत्र हुए विद्वानों और कवियों ने 'शंकर-सदन' को प्रणाम किया और कवि सम्मेलन में महाकवि शंकर को श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। इस अवसर पर कवि शंकर के १२ वर्षीय पौत्र चि० प्रभाशंकर ने अपने

पितामह को उद्देश्य करके "पितामह के प्रति" शीर्षक स्वनिर्मित करुणापूर्ण कविता पढ़ी थी। इस कविता ने तो विबुध-जनमण्डल अथवा कविजन-समूह की नेत्रद्वयी से साक्षात् करुणारस का प्रवाह बहा दिया। वह कविता यह है —

कविता के कान्त छोड़ करके अशान्त हमें,
पहुँच गये हैं पूर्ण शान्ति मिलती तहाँ।
बीतते ही वयस तिहत्तर पितामह को–
लेगया कुटिल काल खींच करके वहाँ।
'शंकर-सदन' छोड शंकर-सदन में जा,
होगये विलीन अन्य कविगण हैं जहाँ।
'अनुराग' का वे 'रत्न' छोड गये हैं परन्तु,
उनका सजीव अनुराग अब है कहाँ!

कविजी अपनी दिव्य काव्यमय कृति के कारण आर्यजगत् में प्रसिद्ध होने के पूर्व ही हिन्दी जगत् में खूब प्रसिद्ध होचुके थे। सरस्वती आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित आपकी कविताएँ बड़े आदर और चावसे पढी जाती थीं। कवि शङ्कर तपस्वी थे, उग्र थे, वे थोडी-सी भूल पर भी बड़े से बडे को आडे हाथ ले बैठते थे। इसका कारण उनकी निःस्पृहता था। 'अलोभ' उनका मुख्य गुण था। स्व० प० पद्मसिंहशर्मा शङ्कर-काव्य के मार्मिक समालोचक और विवेचक थे। आचार्य श्री प० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी भी कवि शङ्कर की उत्तम-से-उत्तम कृतियों को सरस्वती द्वारा काव्यरसिकों तक पहुँचाते रहे।

स्पष्ट बात कहने में शंकरजी ने बड़े-बड़े राजे महाराजे रईसों विद्वानों कवियों सम्पादकों पत्रकारों आर्यसमाज के पंडितम्मन्य पुरोहितों अथवा अहम्मन्य अफ़सरों की भी परवा नहीं की। कवि शंकर विशेष परमाणुओं से बने हुए व्यक्ति थे। वे खास सिद्धान्त के व्यक्ति थे कविशंकर दम्भ, पाखंड अत्याचार अनाचार व्यभिचार के लिए भी नहीं सह सकते थे—चाहे उस प्रकार के दम्भ पाखंड, अत्याचार अनाचार स्वजनों के हों अथवा परजनों के। चाहे वे लोग बड़े हों अथवा कोई हों। कवि शंकर का जो लोग इस दृष्टि से देखेंगे व उनकी महत्ता स्पष्टवादिता असहनशीलता का समादर ही करेंगे और उनकी समादर करेंगे उनकी दुर्दमनीय तीक्ष्ण प्रतिभाशालिता का जो कि कवियों की जन्मसिद्ध बपौती है। कवि शंकर व्यक्तिगत जीवन मे अत्यन्त विनोदी व्यक्ति थे – प्रत्युत्पन्नमति और प्रसंगावधानी धैर्यशालीपुरुष थे।

कविजी आशु कवि भी थे और आशुतोष महादेव की तरह थोड़ी देर में प्रसन्न भी हो जाते थे। अप्रसन्न हो जाते तो चुप रहते। थोड़ी देर मौन रहकर फिर बोलने लगते। वे हृदय के शुद्ध, बाह्याभ्यान्तर शुद्ध व्यवहार के शुद्ध महान् पुरुष थे। करुणारस की चलती-फिरती मूर्ति थे दयावीर थे। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों की रक्षा और दरिद्रों की सहायता करने में अपने आपको कृतार्थ समझते थे। गरीब रोगी की दवा-दारू बड़ी दया से करते थे। आदमी भी परख सिरे के थे। जरा उनका चरम

हुआ कि घोड़ा ठीक नहीं, झट सवारी से उतर पड़ते थे।

कविशंकर जिस बरामदे में बैठकर कविता करते अथवा गुनगुनाते रहते थे वहाँ वे अपना सिर दीवार से लगाये रहते थे। उससे दीवार में एक अच्छा-सा गढ़ा पड़ गया था। वे तकिया नहीं लगाते थे। जब आराम करना होता था तब वहीं उसी जगह लेटते थे और उसी गढ़े में सिर अटका देते थे—उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक गढे में कवितादेवी फुरने लग जाती थी। बड़े आदमी की बड़ी बात !

कवि शंकर धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक राजनैतिक और क्रान्तिकारी कवि थे। उनकी धार्मिक कविता ने तो गजब किया ही है पर राजनैतिक कविता का भी ऐसा पक्का रङ्ग है कि उसको कोई उतार नहीं सकता।

कवि शंकर के कितने ही शिष्य-प्रशिष्य हैं, कोई गुणी हैं, मानी हैं, कोई कृतज्ञ हैं, कोई कृतघ्न भी। कृतज्ञ गुणी शिष्यों का कर्त्तव्य है कि वे शंकर कवि की जीवनी लिखकर उनकी स्मृति को चिरजीविनी बनाने का प्रयत्न करें।

महाविद्यालय ज्वालापुर,
कृष्णजन्माष्टमी, संवत् १९९३

कवि शङ्कर का
अशक्त भक्त—
नरदेव शास्त्री, वेद तीर्थ

अनुरागरत्न
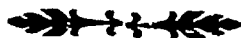
काव्यमर्मज्ञ

काव्य-कानन-केसरी

साहित्याचार्य

स्व० श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

की

विमुक्त आत्मा को

सादर समर्पित।

'शङ्कर'

कविता कामिनी-कान्त
कविराज स्व. श्री पं. नाथूराम शङ्कर शर्मा
जन्म संवत्   मृत्यु-संवत्
१ ६   १९८९

ओ३म्

भूमिकोद्भास
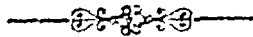
नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतरायच ॥ य० अ० १६ म ४१ ॥

शङ्कर को शङ्कर का प्रणाम

(शङ्कर छन्द *)

जो सर्वज्ञ, सुकवि, सुखदाता, विश्व-विलास-विधाता है ।
जो नव द्रव्य योग उमगाता, शुद्ध एक रस पाता है ॥

---

* (सर्वज्ञ) तत्रनिरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २५ ।

(सुकवि) कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः ॥ य० अ० ४० मन्त्र ८-

(कवि) यः कौति शब्दयति सर्वाविद्या स कविरीश्वरः ।

' स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रियाच"

(श्लोक) नित्यसर्वंगतोह्यात्मा, कूटस्थो दोष वर्जितः,
एकः सभिद्यते शक्त्या, माययानस्वभावतः ॥

(मंत्र) यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः ।
तत्रको मोहः कः शोक-एकत्वमनुपश्यतः । य०अ०४०म०७

(नवद्रव्य) पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाश कालोदिगात्मामनइतिद्रव्याणि॥
वै० अ० १ आ० १ सू० ५-

क्रियागुणवत्समवायिकारणमितिद्रव्यलक्षणम् ॥
वै० अ० १ सू० १५

(शंकर) यः शङ्करयाणं सुखं करोति स शंकरः ।

अपनाते हैं जिस प्रकार को वाचिक रूप कर नाम।
शंकर! उस प्यारे शंकर को कर कर जोड़ प्रणाम॥

तत्त्वीमोद्गार।

शंकर स्वामी से मिला, बिछुड़ा शंकर दास।
मानु प्रभासाद्वैत का भिन्न-अभिन्न-विलास॥

गूढार्थ गर्भोक्ति

(चतुष्पदी छन्द *)

शंकर सबका ईश, सुख मंगल दाता है।
शंकर के गुण गाय गाय जी सुख पाता है॥
शंकर कर कल्याण योगियों को अपनावे।
शंकर गौरव-रूप राम-से मन सम्भावे॥
श्री शंकर की प्यारी उमा + रवि-सी हरि-सी भासती।
रे शंकर! विद्या की खरी मूल शारदा भगवती॥

---

* यह पद्य शंकर-परमात्मा का कीर्तन करता हुआ शंकर (ग्रन्थकार) के अभिप्राय और विषमाय कीयुक्तियों के नामों को भी यथाक्रम प्रकट करता है।

+ "उमाहैमवतीम्" केनोपनिषद् चतुर्थखण्ड।

श्री स्वामी शंकराचार्यजी ने उमा का अर्थ विद्या तथा हैमवती का अर्थ शोभावती किया है।

प्रार्थना-पञ्चक

शङ्कर स्वामी और है, सेवक शङ्कर और।
भेद-भावना में भरे, नाम रूप सब ठौर॥

(मगणात्मक सवैया)

(१)

द्विज वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें,
बल पाय चढ़ें, सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहें, ऋजु पन्थ गहें,
परिवार कहें, वसुधा-भर को॥
ध्रुव धर्म धरें, पर दुःख हरें,
तन त्याग तरें, भव-सागर को।
दिन फेर पिता, वरदे सविता,
करदे कविता, कवि शंकर को॥

(२)

विदुषी उपजें, क्षमता न तजें,
व्रत धार भजें, सुकृती वर को।
सधवा सुधरें, विधवा उबरें,
सकलंक करें, न किसी घर को॥
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें,
कुलबोर छिकें, तरसें दर को।
दिन फेर पिता, वरदे सविता,
करदे कविता, कवि शंकर को॥

(३)

नृपनीति जगे, न अनीति ठगे
भ्रम भूत भगे, न प्रजाधर को ।
भगड़े न मचें खल-खर्व खचें
मद से न रचें, मठ संगर को ॥
सुरभी न कटें, न अनाथ घटें,
सुख भोग बटें, झपटें डर को ।
दिन फेर पिता वरदे सविता
करदे कविता कवि शंकर को ॥

(४)

महिमा उमड़े लघुता न जड़े
जड़ता जकड़े न चराचर को ।
शठता सटके मुदिता मटके
प्रतिभा भटके न समादर को ॥
विकसे विमला शुभ कर्म कला,
पकड़े कमला श्रम के कर को ।
दिन फेर पिता वरदे सविता
करदे कविता कवि शंकर को ॥

(५)

मत जाल जला छलिया न छले
कुल फूट फलें तज मत्सर को ।
अघ दम्भ दबे न प्रपंच फबे
गुरु मान मचें न निरादर को ॥

सुमरें जप से, निरखे तप मे,
सुरपादप-से, तुम अक्षर को।
द्विज फेर पिता, वरदे सविता,
करदे कविता, कवि शंकर को॥

आनन्द-नाद

तू मुझसे न्यारा नहीं, मैं तुझसे कब दूर।
तेरी महिमा से मिली, मेरी मति भरपूर॥

(कलाधरात्मक मिलिन्दपाद)

कवि शंकर विश्व के विधाता,
मुद मङ्गल मूल मुक्तिदाता।
प्रणवादि पवित्र नामधारी,
भवसागर-सेतु शोक-हारी।
प्रभु पाय प्रकाश-पुंज तेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।
जिसके उपदेश में दया है,
अति आ धन नन्द छागया है।
जिसने न सरस्वती विसारी,
विचरा वन बाल ब्रह्मचारी।
उसके तप-तेज का बसेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।
मग-दीपक ब्रह्मज्ञान का है,
उपलक्षण धर्म-ध्यान का है।

वसु सदन परोपकार का है,
प्रभु-पद सभा-सुधार का है।
जगदुन्नति पै जमाय डेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
गुणगायक धर्मराज का है
अनुमान सुधी-समाज का है।
शुभचिन्तक सुप्रदेश का है,
उपहार वरिष्ठ देश का है।
कवि-मण्डल का जमाय घेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
अगले कवि जिसके से सही थे
तुलसी शशि, सूर सूरही थे।
अब केशव की न होड़ होगी,
फिर कौन बने कबीर योगी।
कविता-कृषि-कर्म का कमेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
रचना रसराज की निहारी
जयसिंह सखा बना बिहारी।
लिपि वीर-विकास की विराजी,
कवि भूषण को मिला शिवाजी।
कर मेल कुंवर से घनेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।
सबको वह देश-भक्त भाया
जिसने पद भारतेन्दु पाया।
रच मञ्जु मन सुधार बोली
कविता पर प्रेम-गाँठ खोली।
हरिचन्द्र हृदय रह बसेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

शुभ शब्द-प्रयोग पद्य प्यारे,
रच पिङ्गल-रीति से सुधारे।
रस, भूषण, भावसे भरे हैं,
परखें पटु पारखी खरे हैं।
मन के सुविचार का चितेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

कवि कोविद ध्यान में धरेंगे,
सदभिज्ञ विवेचना करेंगे।
सब साधन सत्य के गहेंगे,
गुण-दूषण न्याय से कहेंगे।
परखे पर तर्क का तरेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

सब धान समान तोल डाले,
समझे पिक और काक काले।
समता मणि-काच में बखाने,
अनभिज्ञ भला-बुरा न जाने।
न बने उस ऊँट का कटेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

भजनीक, सुबोध, भक्त गावें,
न कपोल कुरागिया बजावें।
रचना पर प्रीति हो बड़ों की,
गरजे न गदन्त तुक्कड़ों की।
गरिमा न गिरा सके गमेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

पर पद्य प्रसंग काटते हैं,
यश का रस चोर चाटते हैं।

प्रतिमा प्रभु से न छूटते हैं,
गढ़ ग्रन्थ अपार लूटते हैं।
जगजाय न आलसी लुटेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
ममगिरह चोर खोलते हैं
शठ स्यार कबूक बोलते हैं।
बिन भानु-प्रदीप चन्द्र-तारे,
तम घोर पड़ा सकें न सारे।
रजनी कटजाय हो सवेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।
बल, पौरुष का प्रकाश होगा,
श्रम-साहस का विकास होगा।
गुरुता गुरु-ज्ञान की बढ़ेगी
लघुता अभिमान की घटेगी।
प्रभु ने अनुकूल काम फेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
तन हरष भरा अशक्ति का है
मन भावन आति-भक्ति का है।
धनराशि न पास दान को है,
लघुभाषण मात्र मान को है।
बना उपवास का अपार घेरा चमके अनुरागरत्न मेरा।
अनुभूत विवेक-मंत्र अच्छा
मथ सत्य-समुद्र को निकाला।
वर वर्ण-सुवर्ण में जड़ा है
हित के हिय-हार में पड़ा है।
चलजाय न चोर का बसेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

सरस्वती की महावीरता

(सोरठा)

जिसके आनन चार*, उत्तम अन्त करण हैं ।
दुहिता परमोदार, उन विरञ्चि की भारती ॥

[भुजङ्ग प्रयात]

महावीरता भारती धारती है ।
प्रमादी महा मोह को मारती है ॥
बडों के बड़े कामकी है लड़ाई ।
मिली थी, मिली है, मिलेगी बड़ाई ॥

(घनाक्षरी कवित्त)

(१)

वैदिक विलास करे ज्ञानागार कानन में,
धर्म-राजहस पै समोद चढती रहे ।
फेर-फेर दिव्य गुण-मालिका प्रवीणता की,
पुस्तक पै मूलमन्त्र पाठ पढती रहे ॥
योग वल वीणा के विचार व्रत-तार बाजें,
अज्झल विशिष्ट वाणी घोर कढती रहे ।
शकर विवेक प्राणवल्लभा सरस्वती में,
मेधा महावीरता अमित बढती रहे ॥

---

* उत्तम अन्त करण = सत्यसम्पन्न मन १, ज्ञानविशिष्टाबुद्धि २, योग-युक्त चित्त ३, आत्मप्रतिष्ठापूर्ण अहकार ४ ।

(२)

ज्ञान ब्रह्मचारी के विशद भाल-मन्दिर में
आसन जमाय ज्ञान-दीपक जगाती है ।
सत्य और झूठ की विवेचना प्रचंड शिखा,
कालिमा कुतर्क की कपट पै लगाती है ॥
प्रेमपात्रपौरुष प्रकाश की छबीली छटा
अविद्या विरोध अन्धकार को भगाती है ।
शंकर सचेत महावीरता सरस्वती को
जीव की ठसक ठगियों से न ठगाती है ॥

(३)

आयस के मत्त की बड़ाई भरपेट कर
सामाजिक शक्ति-सुधा पान करती रहे ।
भूले न प्रमाण को सभा में तर्कसाधन को
युक्ति-चातुरी के गुण-गान करती रहे ॥
मान कर वाद प्रतिवाद कोटि कल्पना का
ज्ञान कल्पना का अपमान करती रहे ।
शंकर निदान महावीरता सरस्वती को
मारमिक न्याय सदा दान करती रहे ॥

४

स्वार्थिक पाप पक्षपात के न पास रहे,
सत्य को असत्य में प्रमाण करती नहीं ।
औपाधिक धारणा न मिथ्या के समीप टिके
स्वाभाविक विश्वास में भूल भरती नहीं ॥

न्याय की कठोर काट-छाँट को समोद सुने,
फोरे कूटवाद पर कान घरती नहीं।
शंकर अशंक महावीरता सरस्वती की,
उद्धत अजान जालियों से डरती नहीं॥

५

मन्द मत-तारों की कुवासना दमक सारी,
वैदिक विवेक तप तेज में विलाती है।
ध्येय ध्यान, धारणादि, साधना-सरोवर में,
सामाधिक संयम-सरोरुह खिलाती है॥
शंकर से पावे सिद्ध चक्र सिद्धि चकई को,
योग दिन में न भेद रजनी मिलाती है।
ब्रह्म रवि ज्योति महावीरता सरस्वती की,
शुद्ध अधिकारियों को अमृत पिलाती है॥

६

ब्रह्मा, मनु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, व्यास, गोतम-से,
सिद्ध, मुनि-मण्डल के ध्यान में धसी रही।
राम और कृष्ण के प्रताप की विभूति बनी,
बुद्ध के विशुद्ध ध्रुव लक्ष्य में लसी रही॥
शंकर के साथ कर एकता कबीरजी की,
सुरत सखी के गास-गास में गसी रही।
मेंट मत-पन्थ महावीरता सरस्वती की,
देव दयानन्द के वचन में बसी रही।

७

मान दान माघ को महत्त्व दान मम्मट को
दान अभिराम का सुयश का दिला चुकी।
रामामृत तुलसी को काव्यसुधा केशव को,
राधिका-भक्तिरस सूर को पिला चुकी ॥
मुग्ध मान-पान देश-भाषा परितोषन का,
भारत के इन्दु हरिचन्द को खिला चुकी।
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की,
शंकर-से दीन मतिहीन को मिला चुकी ॥

८

आदमी सुजान को सुपन्थ दिखलाती रहे,
कायर कुचालियों की गैल गहती नहीं।
पुण्यशील भिक्षुक अकिञ्चन को ऊँचा करे,
पापी धनपति का प्रताप भी चहती नहीं ॥
उद्यमी उदार के सुकर्म की सुख्याति बने
आलसी कृपण की बुराई सहती नहीं।
शंकर अनन्य महावीरता सरस्वती की,
वञ्चक बनावटी के पास रहती नहीं ॥

९

प्यार भरपूर करे लोकसिद्ध सभ्यता पै
अधमा असभ्यता पै कोप करती रहे।
ग्रन्थकार लेखक महाशयों की रचना से
भाषा का विराम बड़ा कोष भरती रहे ॥

पक्षपात छोड़ कर सत्य समालोचना से,
लेखों के प्रसिद्ध गुण-दोष करती रहे।
शंकर पवित्र महावीरता सरस्वती की,
प्रेमी पुरुषों का परितोष करती रहे ॥

१०

राजभक्ति-भूषिता प्रजा में सुख-भोग भरे,
मंगल महामति महीप का मनाती है।
धीर, धर्मवीर, कर्मवीर, नर नारियों के,
जीवन अनूठे जन-जन को जनाती है ॥
बाँध परतंत्रता स्वतंत्रता को समता से,
प्रीति उपजावे भ्रम-भंग न छनाती है।
शंकर उदार महावीरता सरस्वती की,
धार्मिक सुधार को यथाविधि बनाती है ॥

११

दान और भोग से बचाय धन-सम्पदा को,
भागे सब सूम साथ कुछ भी न ले गये।
हिंसक, लबार, राजद्रोही, ठग, जार, ज्वारी,
काल विकराल की कुचाल से दले गये ॥
तामसी, विलासी, शठ, मादकी, प्रमाद-भरे,
लालची मतों के छल बल से छले गये।
शंकर मिली न महावीरता सरस्वती की,
पातकी बिताय वृथा जीवन चले गये ॥

१२

मञ्जुल मराल मन मानसी मसान सूझे,
हारे कपोतराज सुधारक न जीते हैं।
प्रमामृत बूँद भी मिला न प्रेम-सागर से
वैर-वारि से न कुविचार घट रीते हैं॥
काट-काट पक्षों का शोणित बहाय रहे,
हाय! न मिलाप-महिमा का रस पीते हैं।
शंकर पक्षी न महावीरता सरस्वती की
जीवन अधम अनमेल ही में बीते हैं॥

(सोरठा)

प्रकटे मरतुपोत, मद विवेक दिनेश का।
चमकें मत-खद्योत अब न अविद्या-रातमें॥

कविकुल की मङ्गल-कामना

(छप्पय छन्द)

सुन्दर शब्द प्रयोग मनोहर भाव रसीले।
दूषण-हीन प्रशस्त पद्य भूषण भड़कीले॥
प्रिय प्रसादता पाय मर्म महिमा दरसावें।
रसिकों पर आनन्द, सुधा-सीकर बरसावें॥
जिन के द्वारा इस भाँति की, परम रम्य कविता बने।
उन कवियों का लोक में सुयश सदा शंकर बढ़े॥

कवि की सदाशा

रहती है जो शारदा, कविमण्डल के साथ ।
क्या शकर के शीशपै, वह न धरेगी हाथ ॥

दोहा कविता गाय का, जब दोहा बनजाय ।
तब दोहा साकार हो, तब यश दोहा खाय ॥

सत्कविता के पारखी, प्यारे सुकवि समाज ।
कृपया मेरी ओर भी, देख यथोचित आज ॥

रखता है तू न्याय से, जिस पै हितका हाथ ।
अपनालेता है उसे, फिर न विसारे साथ ॥

जो मेरी मति ने तुझे, कुछ भी किया प्रसन्न ।
तो मन मानेगा उसे, विनय शक्तिसम्पन्न ॥

वर्त्तमान बोली खड़ी, पकड़ी चाल नवीन ।
सारी रचना जाँचले, परख प्रथा प्राचीन ॥

जो सरस्वती आदि में, निकल चुके हैं लेख ।
उनकी भी सशोधना, इस ग्रन्थन में देख ॥

अपनाले साहित्य को, कर भाषा पर प्यार ।
गुण गाले सगीत के, शकर काव्य सुधार ॥

गद्य, पद्य, चम्पू रचें, सिद्ध सुलेखक लोग ।
उनकी शैली सीखले, कर साहित्य प्रयोग ॥

भारत भाषा का यह मान महत्व अपार।
गौरव धारे नागरी, ललित लेख विस्तार॥
नारद की शिक्षा फल पाय भरत से मान।
लोकमित्र संगीत का स्वरग मधुर-गान॥
मध्य कल्पना शक्ति से प्रतिभा करे सहाय।
ब्रह्मानन्द सहोदरा सत्कविता बनजाय॥

पद्य-रचना की विशेषता

(सार छंद)

अक्षर तुल्य वर्ण वृत्तों में, सहित गणों के आवेंगे।
मुक्तक छन्द मात्रिकों में भी वर्ण बराबर पावेंगे॥
तथा पद प्रत्येक पद्य के सकल विधान प्रधान।
समता से यह रचना में भी गुरु लघु गिनो समान॥

ग्रन्थकार का आत्म-परिचय

(छप्पय छंद)

पद्य विद्या भरपूर न पण्डितराज कहाया।
धन धनधारी शूर न धरा का भ्रात कहाया॥
उद्यम को अपनाय न धनका कोष कमाया।
जीवन में मधुपाय न सेवक मान समाया॥
हा! कुल भी गौरव-वंश का सौरभ रखा न मूढ़ है।
भिक्षुक हरदुभार्गव का शंकर शठ मतहूक है॥

अनुरागरत्न का जन्मकाल

(हरिगीतिका छन्द)

वसु, राग, अङ्क, मयङ्क, सवत, विक्रमीय उदार है ।
तिथि पञ्चमी सित पक्ष की मधु, मास मङ्गलवार है ॥
मतिमन्द शकर होचुका अब, ठीक बावन वर्ष का ।
"अनुरागरत्न" अमोल पाकर, भोग जीवन हर्ष का ॥

आनन्दोद्गार

(कलाधरात्मक राजगीत)

जिस में नटराज ला चुका है,
उस नाटक में नचा चुका है ।
जिस के अनुसार खेल खेले,
वह शैशव दूर जा चुका है ।
उस यौवन का न खोज पाता,
अपना रस जो चखा चुका है ।
तन-पजर होगया पुराना,
मन मौज नवीन पाचुका है ।
अब सीकर सिन्धु में मिलेगा,
शुभ काल समीप आ चुका है ।
शिव-शकर का मिलाप होगा,
दिन अन्तर के बिता चुका है ।

मङ्गलोद्गार

ज्ञानी सिद्ध-समाज में, करते मंगल-गान ।
ज्ञान गायनामृत का दे हम सबको दान ॥

गीत

गावें गावें मंगल बार-बार ।
धर्म धुरीण वीर व्रतधारी, उमग योग-बल बार बार ।
गावें-गावें मंगल बार-बार ।
ठौर-ठौर अपने ठाकुर को निरख प्रेम-निधि बार-बार ।
गावें-गावें मंगल बार-बार ।
नर भवसिन्धु आप तीरों में अभय भाव भर बार-बार ।
गावें-गावें मंगल बार-बार ।
माँग दयालु देव शंकर से, चतुर ! चाह फल बार बार ।
गावें-गावें मंगल बार-बार ।

(दोहा)

नींव दीजिये भूमिका भाव नहीं कुछ और ।
लागे जाति-सुधार की नींव बने सब ठौर ॥

अनुरागरत्न

मंगलोल्लास

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ य० अ० ३ म० ३ ॥

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो योन्यायकृच्छुचि ।
भूयात्तमां सहायो नो, दयालु सर्वशक्तिमान ॥

ओमुत्कर्ष

शंकर स्वामी के सुने, शंकर नाम अनेक ।
मुख्य सर्वतोभद्र है, मंगलमय ओमेक ॥

(शंकर छन्द)

एक इसी को अपना साथी, अर्थ अशेष बताते हैं ।
उच्चारण के साधन सारे, रसना रोक जताते हैं ॥
ऐसा उत्तम शब्द कोष में, मिला न अब तक अन्य ।
ओमुद्भूत नाम शंकर का, सकल कलाधर धन्य ॥

मुख्य नाम है ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध ।
योगी जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध ॥

ओमाराधन

ओमक्षर के अर्थ का करले ध्यान पवित्र।
ओम बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र॥

(प्रबन्ध *)

ओमनेक बार बोल
प्रेम के प्रयोगी।

है यही अनादि नाद निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद वीतराग योगी।
ओ बा बो प्रे प्रयोगी।

वेद को प्रमाण मान अर्थ-ओकता बखान
गाउठे गुणी सुजान साधु स्वर्ग-भोगी।
ओ बा बो प्रे प्रयोगी।

ध्यान में धरें विरक्त भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप-रोगी।
ओ बा बा प्रे प्रयोगी।

शंकरादि नित्य नाम जो जपे बिसार काम
तो बने विवेक-धाम मुक्ति क्यों न होगी।
ओ० बा० बो प्रे प्रयोगी।

---

* यह गीत [illegible] से रचा गया है, इसकी टेक उस छन्द के एक चरण का परार्द्ध मात्र है, आगे के चरण उस छन्द के (पूरे चरण स्वरूप हैं।

ओमर्थज्ञान

ओमक्षर अखिलाधार,
जिसने जान लिया।
एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्ध विधाता, विश्व, विश्व भरतार,
को पहँचान लिया।
ओ० अ० जि० जानलिया॥

भूतनाथ, भुवनेश, स्वयम्भू, अभय, भावभण्डार,
नित्य, निरञ्जन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार,
मनु को मान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन करतार,
परमानन्द-पयोधि, प्रतापी, पूरण परमोदार,
से सुख-दान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

सत्य सनातन, श्रीशंकर को, समझा सबका सार,
अपना जीवन-बेडा उसने, भवसागर से पार,
करना ठान लिया।
ओ० अ० जि० जान लिया॥

दोहा

गूँद ज्ञान के तार में, गुरिया गुरु के नाम।
इस माला के मेल से, भजन करो निष्काम॥

भजन-माला

भज भगवान के हैं,
मंगल-मूल नाम बे सारे।

ओमद्वैत अनादि अजन्मा, ईश असीम असंग।
एक अलख अर्यमा अजर अखिलाधार, अनंग ॥
भ भ के मं मू नाम थे सारे ॥

सत्य सच्चिदानन्द स्वयंभू सद्गुरु ब्राम गणेश।
सिद्धोपास्य सनातन स्वामी मायिक मुक्त, महेश ॥
भ भ के म मू नाम बे सारे ॥

विश्वविधामी विश्वविधाता धाता पुरुष पवित्र।
माता पिता पितामह, भ्राता बन्धु, सहायक मित्र ॥
भ भ के मं मू नाम थे सारे ॥

विश्वनाथ विश्वम्भर ब्रह्मा विष्णु, विराट् विशुद्ध।
वरुण विश्वकर्मा विज्ञानी विश्व बृहस्पति बुद्ध ॥
भ० भ० के० मं मू नाम थे सारे ॥

शेष सुपर्णी शक्र ओंकार सविता शिव सर्वज्ञ।
पूषा मायी पुरोहित होता इन्द्र देव यम यज्ञ ॥
भ भ के मं मू नाम बे सारे ॥

अग्नि, वायु, आकाश अङ्गिरा पृथिवी जल आदित्य।
न्याय-निधान नीति-निर्माता निर्मल निगुण नित्य ॥
भ भ के मं मू नाम बे सारे ॥

ब्रह्म वैद-वक्ता अविनाशी दिव्य अनामय, अज।
धमराज मनु, विद्याधारी सद्गुण-गण-सम्पन्न ॥

म० भ० के० म० मू० नाम ये सारे ॥
सर्वशक्तिशाली, सुखदाता, मस्मृति-सागर-सेतु ।
काल, रुद्र, कालानल, कर्त्ता, राहु, चन्द्र, बुध, केतु ॥
म० भ० के० म० मू० नाम ये सारे ॥
गरुत्मान, नारायण, लक्ष्मी, कवि, कूटस्थ, कुबेर ।
महादेव, देवी, सरस्वती, तेज, उरुक्रम, फेर ॥
म० भ० के० म० मू० नाम ये सारे ॥
भक्तो! नाम सुने शंकर के, अटल एकसौ आठ ।
अर्थ विचारो इस माला के, कर से घिसो न काठ ॥
म० भ० के० म० मू० नाम ये सारे ॥

ईश्वर-प्रणिधान-पञ्चक

(हरिगीतिका छन्द)

(१)

अज, अद्वितीय अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है ।
अभिराम, अव्याहत, अगोचर, अग्नि, अखिलाधार है ॥
मनु, मुक्त, मङ्गलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है ।
करतार! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(२)

वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बुद्ध है ।
वरुणेन्द्र, वायु, वरिष्ठ, विश्रुत, वन्दनीय, विशुद्ध है ॥

गुणहीन, शुद्ध, विज्ञान-सागर ज्ञान-गम्य गणेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(३)

निरुपाधि नारायण निरञ्जन, निर्भयामृत-नित्य है ।
अजा, अनादि, अनन्त, अनुपम अमल अज आदित्य है ॥
परिभू पुरोहित, प्राण प्रेरक, प्राण-पूज्य-प्रजेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(४)

कवि अमल कामान्तक कृपाकर, केतु कल्याण-कन्द है ।
सुखधाम सत्य सुपर्ण सच्चिद्घन सर्व-मित्र स्वच्छन्द है ॥
भगवान्, भावुक भक्त वत्सल भू विभू भुवनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(५)

अव्यक्त, अक्षय अकाय अच्युत अङ्गिरा, अविरोध है ।
श्रीमच्छुभाशुभशून्य शंकर, शुक्र, शासक, शेष है ॥
जगदम्ब जीवन-जन्मकारण जावधर अनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

दोहा

ज्ञान-गम्य सरल है, शंकर तुही स्वतंत्र ।
मेरे ही उपदेश हैं विपुल वैदिक मंत्र ॥

शंकर-कीर्त्तन

(रुचिरा छन्द)

(१)

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामर अत्ता है।
तेरी परम शुद्ध सत्ता की, सीमारहित महत्ता है॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिसने तुझको जाना है।
उस योगीश महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है॥

(२)

हे अद्वैत, अनादि, अजन्मा तू सब मत का स्वामी है।
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल अन्तर्यामी है॥
भक्ति-भावना की भुवना मे, जो तुझको अपनाता है।
वह विद्वान, विवेकी, योगी, मनमाना सुख पाता है॥

(३)

हे आदित्य देव अविनाशी, तू करतार हमारा है।
तेजोराशि अखण्ड प्रतापी, सब का पालन हारा है॥
जो धर ध्यान धारणा तेरी, प्रेम-भाव में भरता है।
तू उसके मस्तिष्क कोष में, ज्ञान-उजाला करता है॥

(४)

हे निर्लेप निरजन, प्यारे, तू सब कहीं न पाता है।
सब मे पाता है, पर सारा, सब में नहीं समाता है॥
जो ससार-रूप-रचना में, ब्रह्म-भावना रखता है।
वह तेरे निर्भेद भाव का, पूरा स्वाद न चखता है॥

(५)

हे मूलेश महा बलधारी तू सब संकट-हारी है।
तेरी मङ्गलमूल दया का आप-मूल अधिकारी है॥
धर्म धार जो प्राणी तुझ से पूरी लगन लगाता है।
विद्या बल देता है उसको भ्रम का मूल भगाता है॥

(६)

हे आनन्द महा सुखदाता तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक माता-पिता हमारा मित्र,सहायक भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही नाम निरन्तर लेता है।
तू उस प्रेमाधार पुत्र को मन्त्र-बोध बल देता है॥

(७)

हे बुध बालधर विज्ञानी तू बोधक कहलाता है।
कर्मोपासन, ज्ञान इन्हीं से जीवन जीव बिताता है॥
जो समीपता पाकर तेरी जो कुछ भी में मरता है।
धर्म समझ लेता है जैसा वह वैसा ही करता है॥

(८)

हे करुणा—सागर के स्वामी तू तारक पद पाता है।
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा पल में पार लगाता है॥
तेरी पापहीन प्रभुता से त्रिभ का भी भरजाता है।
वह पापी संसार-सिन्धु को मोह त्याग तर जाता है॥

(९)

हे सर्वज्ञ सुबोध विहारी तू अनुपम विज्ञानी है।
तेरी महिमा गुरुलोगों ने बचनातीत बखानी है॥

जिसने तू जाना-जीवन को, संयम रस में साना है।
उस संन्यासी ने अपने को, सिद्ध-मनोरथ माना है॥

(१०)

हे सुविश्वकर्मा, शिव, स्रष्टा, तू कब ठाली रहता है।
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है॥
जो आलस्य विसार विवेकी, तेरे घाट उतरता है।
उस उद्योग-शील के द्वारा, सारा देश सुधरता है॥

(११)

हे निर्दोष प्रजेश प्रजा को, तू उपजाय बढाता है।
तेरे नैतिक दण्ड न्याय से, जीव कर्म फल पाता है॥
पक्षपात को छोड़ पिता जो, राज-धर्म को धरता है।
वह सम्राट् सुधी देशों का, सच्चा शासन करता है॥

(१२)

हे जगदीश, लोक-लीला के, तू सब दृश्य दिखाता है।
जिनके द्वारा हमलोगों को, शिल्प अनेक सिखाता है॥
जिसको नैसर्गिक शिक्षा का, पूरा अनुभव होता है।
वह अपने आविष्कारों से, बीज सुयश के बोता है॥

(१३)

हे प्रभु यज्ञ, देव, आनन्दी, तू मंगलमय होता है।
तप्त भानु-किरणों से तेरा, होम निरन्तर होता है॥
जो जन तेरी भाँति अग्नि में, हित से आहुति देता है।
वह सारे भौतिक देवों से, दिव्य सुधा-रस लेता है॥

(१४)

हे कालानल, काल, अर्यमा तू यम रुद्र कहाता है।
धर्म-हीन दुष्टों के दल में, दुःख प्रवाह बहाता है॥
जो तेरी वैदिक पद्धति से, टेढ़ा-तिरछा चलता है।
वह पापी परपञ्च प्रमादी घोर ताप से जलता है॥

(१५)

हे कविराज-वेदमंत्रों के तू कविकुल का नेता है।
गद्य, पद्य-रचना की मेधा विश्व दया कर देता है॥
सर्व काल तेरे गुण गाता जो कवि-सदयश जीता है।
शंकर भी है भरा उसी का मधु-काव्य-रस पीता है।

मिश्र-मिलाप

(साखी)

मैं समझता था कहीं भी कुछ पता तेरा नहीं।
आज शंकर तू मिला तो अब पता मेरा नहीं॥

(कौमोदियार गीत)

मिल आने का ठीक ठिकाना,
अब तो आना रे।

बैठ गया विज्ञान-कोप पै, गुरु-गौरव का बाना
प्रेम-पन्थ में भेद-भाव से पड़ा न मेरा निशाना
बरता बाना रे। अब तो आना रे।
मतवालों की भाँति न माने, वाद-विवाद बढ़ाना,
समता ने सारे अपनाये, किस को कहूँ बिराना

कुनवा मानारे । अव तो जानारे ।

देख अखण्ड-एक मे नाना, दृश्य महा सुख माना,
बाजे साथ अनाहत बाजे, थिरके मन मस्ताना.

महिमा गानारे । अब ता जानारे ।

विद्याधार-वेद ने जिसको, ब्रह्म-विशुद्ध बखाना,
भागी भूल आज उस प्यारे, शकर का पहँचाना,

मिलना ठानारे । अब तो जानारे,

परमात्म-प्रशस्ति

शकर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक ।
वे अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक ॥

विश्व-विलासी ब्रह्म का, विश्व रूप सब ठौर ।
विश्वरूपता से परे, शेप नहीं कुछ और ॥

होना सम्भव ही नहीं जिस में सैक, निरेक ।
जाना उस अद्वैत को, किसने विना विवेक ॥

जिस की सत्ता का कहीं, नादि, न मध्य, न अन्त ।
योगी हैं उस बुद्ध के, बिरले सन्त-महन्त ॥

सर्व-शक्ति-सम्पन्न है, स्वगत-सच्चिदानन्द ।
भूले, भेद, अभेद में, मान रहे मतिमन्द ॥

शंकर स्वामी से न हो, शंकर सेवक दूर ।
न्याय दया माँगे मिले, ज्ञान भक्ति भरपूर ॥

शंकर सर्वाधार है शंकर ही सुखधाम ।
शंकर प्यारे मंत्र हैं शंकर के सब नाम ॥

अनुकम्पा आनन्द की जब होगी अनुकूल ।
तब ही होंगे जीव के, कष्ट विनष्ट समूल ॥

सोरठा

मंगलमूल महेश दूर अमंगल को करे ।
ब्रह्मविवेक दिनेश मोह महातम को हरे ॥

ब्रह्मविषयकाष्टक

(मनहरी कवित्त)

(१)

एक शुद्ध सत्ता में अनेक भाव भासते हैं,
भेद भावना में भिन्नता का न प्रवेश है ।
नानाकार द्रव्य गुणधारी, भिन्न नाचते हैं
अम्बर दिग्मान काले देश का न लेश है ॥
औपाधिक नाम रूप-धारी महा माया मिली
माया मानी जीव शुद्ध मायिक महेश है ।
न्यारे न कदापि बना ज्ञानी मिलो शङ्कर से,
सत्यवादी वेद का यही तो उपदेश है ॥

(२)

आदि, मध्य, अन्तहीन भूमा भद्र भासता है,
पूरा है, अखण्ड है, असग है, अलोल है।
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं,
विश्वता से बाहरी न ठोस है न पोल है।
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है,
एकता अतोल मे अनेकता की तोल है।
भेदहीन नित्य मे सभेदों की अनित्यता है,
खोजले तू शकर जो ब्रह्म की टटोल है।

(३)

एक में अनेकता, अनेकता में एकता है,
एकता, अनेकता का मेल चकाचूर है।
चेतना से जडता को, जडता से चेतना को,
भिन्न करे कौन-सा प्रमाता महा शूर है॥
ठोस को न छोड़े पोल, पोल को न त्यागे ठोस,
ठोस नाचती है, टिकी पोलसे न दूर है।
भावरूप सत्ता में असत्ता है, अभावरूप,
शकर यों असत्ता में सहत्ता भरपूर है॥

(४)

सत्य-रूप सत्ता की महत्ता का न अन्त कहीं,
नेति-नेति बार-बार वेद ने बखानी है।

चेतन-स्वयंभू सारे लोकों में समाय रहा
जीव प्यारे पुत्र हैं, प्रकृति महारानी है ॥
जीवन के चारों फल बाँटे भक्त-भागियों को,
पूरण प्रसिद्ध ऐसा दूसरा न दानी है ।
शंकर जो राजा-महाराजों का महेश बनी,
विश्वनाथ ब्रह्म की बड़ाई मन मानी है ॥

(४)

पावक से रूप स्वाद पानी से मही से गन्ध
मारुत से छूत, शब्द अम्बर से पाते हैं ।
खाते हैं अनेक अन्न पीते हैं पवित्र पय
रेशम पाट, खाल, तूल, ओढ़ते बिछाते हैं ॥
अन्य प्राणियों को जाति-योग से मिले हैं भोग
ज्ञान-सिद्ध-साधनों से मानव कमाते हैं ।
शंकर दयालु स्वामी देता है दया से सब,
पाय-पाय प्यारे जीव जीवन बिताते हैं ॥

(५)

माने अवतार तो अनन्तता की लोपता है,
भव्यहीन सारे भक्तियों का सिरमौर है ।
पूजे प्रतिमा तो विश्व-व्यापकता खोसती है,
नारायण स्वामी का ठिकाना सब ठौर है ॥
लोकों मने देवता यों एकता निषेध करे,
एक महादेव कोई दूसरा न और है ।

अन्तको प्रपञ्च ही में पाया शुद्ध शकर जो,
भावना से भिन्न है न श्याम है, न गौर है ॥

(७)

एक मैं ही सत्य हूँ, असत्य मुझे भासता है,
ऐसी अवधारणा अवश्य भूल भारी है।
पूजते जडों को, गुण गाते हैं मरो के सदा,
कर्म अपनाये महा, चेतना विसारी है ॥
मानते हैं दिव्य दूत, पूत, प्यारे शकर के,
जानते हैं नित्य निराकार तन धारी है।
मिथ्या मत वालों को सचाई कब सूझती है,
ब्रह्म के मिलाप का विवेकी अधिकारी है ॥

(८)

योग साधनों से होगा चित्त का निरोध और,
इन्द्रियों के दर्प की कुचाल रुक जावेगी।
ध्यान, धारणा के द्वारा सामाधिक धर्म धार,
चेतना भी सयम की ओर झुक जावेगी ॥
मूढता मिटाय महा मेधा का बढेगा वेग,
तुच्छ लोक-लालच की लीला लुक जावेगी।
शकर से पाय परा विद्या यों मिलेंगे मुक्त,
बन्धन की वासना अविद्या चुक जावेगी ॥

भूल की भरमार

छल कविता के बल पढ़ प्रामाविक पाठ ।
करें आपस में बढ़े सब के उलटे ठाठ ॥
भारी भूल में र,
मोसे भूसे भूल डालें ॥
काल युक्ति के बाट न जिसका तक-तुला पर तोलें
कल्पों की अटकल से सत को टक टिकाव टटोलें ।
मा गू० भी मू मू डोलें ।
पाय पुकारा सत्य सविता का मोहित उलूक न खोलें,
अभिमानी अम्बर अधम की, आग-आग कर बोलें ।
मा भू भो भू भू डालें ॥
पोच प्रपञ्च पसार प्रमादी मंझट को सकझोलें,
स्वर्ग-सरोवर प्रेमामृत में नक्र बैर-विष घोलें ।
मा० भू भो भू भू डालें ॥
हम तो शठता त्याग सँगाती सदुपदेश के हो लें
शंकर समता की सरिता में तर, मन मानी पी लें ।
मा भू भो भू भू डोलें ॥

कुटस्थ-कुठोक्ति

सब सुख खोटे खरे, सिरट लाखको खेल ।
काम मोह माया तजी शंकर से कर मेल ॥

(राजगीत)

कुछ नहीं, कुछ मे समाया, कुछ नहीं,
कुछ न कुछ का भेद पाया, कुछ नहीं।
एकरस कुछ है नहीं कुछ, दूसरा,
कुछ नहीं बिगड़ा, बनाया, कुछ नहीं।
कुछ न उलझा, कुछ नहीं के, जाल मे,
कुछ पड़ा पाया, गमाया, कुछ नहीं।
बन गया कुछ और से कुछ, और ही,
जान कर कुछ भी जनाया, कुछ नहीं।
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ, और है,
कुछ नहीं अपना, पराया, कुछ नहीं।
निधि मिली जिसको न कुछके, मेलकी,
उस अबुध के हाथ आया, कुछ नहीं।
वह वृथा अनमोल जीवन, खो रहा,
धर्म-धन जिसने कमाया, कुछ नहीं।
अब निरन्तर मेल शकर, से हुआ,
कर सकी अनमेल माया, कुछ नहीं।

सद् सम्मेलन

ज्ञान विना होते नहीं, सिद्ध यथोचित कर्म।
रचते हैं ससार को, जड चेतन के धर्म॥

पाया सदसदुमय संयोग॥

चतुर चातुरी से कर देखो, अमित यत्न उद्योग
इनका छूटा न, है न न होगा, अन्तर मुक्त वियोग।

पाया सदसदुमय संयोग॥

कौन मिटावे जड़ चेतन का स्वाभाविक प्रतियोग,
ठोस पोल से अलग न होगी वृथा उपाय-प्रयोग।

पाया सदसदुमय संयोग॥

भटका यहीं सकल जीवों में व्यापक जन्मन-रोग,
जीवन, जन्म मरण के द्वारा रहे कर्म-फल भोग।

पाया सदसदुमय संयोग॥

जीवनमुक्त महापुरुषों के मान अमाप नियोग,
धार विवेक शुद्ध बनते हैं शंकर विरले लोग।

पाया सदसदुमय संयोग॥

ब्रह्म की विश्वरूपता

मूर्खों की भरमार के मूल भयानक भेद।
बतलाता है ब्रह्म को इस प्रकार से वेद॥

यों शुद्ध सच्चिदानन्द
ब्रह्म को बतलाता है वेद॥

केवल एक अनेक बना है निर्विवेक सविवेक बना है
रूपहीन बन गया रंगीला लोहित, श्याम सफेद।

ब्रह्म को बतलाता है वेद॥

टिका अखड समष्टि रूप से, खडित विचरे व्यष्टि रूप से ,
जड़ चैतन्य विशिष्ट रूप से, रहे अभेद सभेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥
पूरण प्रेम-पयोधि प्रतापी, मङ्गल मूल महेश मिलापी ,
सिद्ध एक रस सर्व-हितैषी, कहीं न अन्तर, छेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥
विश्व विधायक विश्वम्भर है, सत्य सनातन श्रीशङ्कर है ,
विमल-विचारशील भक्तों के, दूर करे भ्रम खेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥

जागती ज्योति

प्यारे प्रभु की ज्योति का, देख अखण्ड प्रकाश।
सत्य मान हो जायगा, मोह-तिमिर का नाश ॥
निरखो नयन ज्ञान के खोल,
प्रभु की ज्योति जगमगाती है ॥
देखो दमक रही सब ठौर, चमके नहीं कहीं कुछ और,
प्यारी हम सब की सिरमौर, उज्ज्वल अङ्कुर उपजाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥
जिसने त्यागे विषय विकार, मनमें धारे विमल विचार,
समझा सदुपदेश का सार, उसको महिमा दरसाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥

जिस को किया कुमति ने अन्ध बिगड़ा जीवन का सुप्रबन्ध,
कुछ भी रहा न तप का गन्ध सड़के पर न उसे पाती है।
नि० म० ज्ञा० को प्र० ज्यो० जगमगाती है॥
जिसने झंझट की मार मेघ परखे जड़ चेतन के बन्ध,
अपना किया निरन्तर मन शङ्कर उसको अपनाती है॥
नि० न ज्ञा को प्र ज्यो जगमगाती है॥

प्रथम विश्राम

स्वामी सब संसार का वह अधिकारी एक।
जिसके माया-भास में उलझे जीव अनेक॥ १॥
भेद न सूझे भेद में ज्ञान छिपा जगदीश।
पूछे पग विज्ञान के फोड़ कुमति का शीश॥ २॥
होते हैं जिस एक से हम सब के जन्मादि।
सत्ता है उस ईश की शुद्ध अनन्त अनादि॥ ३॥
सर्व शक्ति-सम्पन्न है, रचना रचे अनेक।
साथ सर्व-संघात के रहे एक रस एक॥ ४॥
सब जीवों का मित्र है जो जगदीश पवित्र।
उपजावे पाले, हरे यह संसार विचित्र॥ ५॥

ब्रह्मज्योति

(मालती वृत्त)

ज्योति अखण्ड निरञ्जन की, भरपूर प्रशस्त प्रकाश रही है।
दिव्य छटा निरखी जिस ने, उस ने दुविधा भ्रम की न गही है॥
सिद्ध विलोक बखान रहे, सब ने छवि एक अनन्य कही है।
तू कर योग निहार चुका, अब शंकर जीवनमुक्त सही है॥

मिलाप की उमंग

(सगणात्मक सवैया)

अबलों न चले उस पद्धति पै, जिसपै व्रत-शील विनीत गये।
वह आज अचानक सूझ पड़ी, भ्रम के दिन बाधक बीत गये॥
प्रभु शंकर की सुधि साथ लगी, मुख मोड़ हठी विपरीत गये।
चलते चलते हम हार गये, पर पाय मनोरथ जीत गये॥

परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है

(सगणात्मक सवैया)

जिसने सब लोक रचे सब को, उपजाय, बढ़ाय विनाश करे।
सबका प्रभु, साथ रहे सब के, सब में भरपूर प्रकाश करे॥
सब अस्थिर दृश्य दुरें दरसें, सब का सब ठौर विकाश करे।
वह शङ्कर मित्र हितू सब का, सब दुख हरे न हताश करे॥

तन, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, अण्डज, सारे ।
अमित अनेकाकार, चराचर जीव निहारे ॥
नव द्रव्यों के अति योगसे, उपजा सब संसार है ।
इस अस्थिर के अस्तित्व का, शंकर तू करतार है ॥

परमात्मा का पूरा प्यार

अपना लेता है जिसे, शंकर परमोदार ।
देता है उस जीवको, जीवनके फल चार ॥

(भजन)

जगदाधार दयालु उदार,
जिस पर पूरा प्यार करेगा ॥

उस की बिगड़ी चाल सुधार, सिर से भ्रम का भूत उतार,
देकर मङ्गल-मूल विचार, उर में उत्तम भाव भरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥
दैहिक, दैविक, भौतिक, ताप, दाहक, दम्भ, कुकर्म-कलाप,
अगले, पिछले, सञ्चित पाप, लेकर साथ प्रमाद मरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥
कर के तन, मन, वाणी शुद्ध, जीवन धार धर्म अविरुद्ध,
बन कर बोध-विहारी बुद्ध, दुस्तर मोह-समुद्र तरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

अनुचित भोगों से मुख मोड़ अस्थिर विषय-वासना छोड़,
बन्धन जन्म-मरण के तोड़ होकर मुक्त-स्वरूप वरेगा।
ब प्र ज० जि पूरा प्यार करेगा ॥

महादेव रुद्र से सब डरते हैं

(दोहा)

जिसने जीता काल को मृत किये भय भीत।
वे प्यारे उस ईश के जो न चलें विपरीत ॥

(भजन)

जिस अविनाशी से डरते हैं,
भूत देव जड़, चेतन सारे ॥

जिसके डर से अम्बर डोले सम मन्द-गति मारुत चाले,
पावक जले प्रवाहित पानी पुद्गल वेग वसुधा में धारे।
जि० अ० ज० भू० दे ज० चे सारे ॥

जिसका दण्ड दमों दिन भावे काल करे, ऋतु-चक्र चलावे
नरमें भय कामिनी दमके, भानु तपे चमकें शशि तारे।
जि अ ड भू० दे ज० चे० सारे ॥

मतको जिसका कोप डरावे घेर प्रकृति को नाच नचावे
जीव कर्म-पाश माग रहे हैं, जीवन, जन्म मरण के मारे।
जि० अ ड भू० दे० ज चे० सारे ॥

जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्मयोग करते हैं,
वे विवेक-वारिधि बडभागी, बनते हैं उस प्रभु के प्यारे।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे॥ १॥

रुद्र दण्ड

(दोहा)

करता है जो पातकी, विधि निषेध का लोप।
होता है उस नीच पै, शंकर प्रभु का कोप॥

(शुद्धगात्मक राजगीत)

खलों में खेलते खाते, भलों को जो जलाते हैं,
विधाता न्यायकारी से, सदा वे दण्ड पाते हैं।
प्रतापी तीन तापों से, प्रमत्तों को तपाता है,
कुटुम्बी, मित्र, प्यारे भी, बचाने को न आते हैं।
अजी जो अङ्ग-रक्षा पै, न पूरा ध्यान देते हैं,
मरें वे नारकी पीड़ा, न रोगों से छुड़ाते हैं।
प्रमादी, पोच, पाखंडी, अधर्मी, अन्ध-विश्वासी,
अविद्या के अँधेरे में, मतों की मार खाते हैं।
अभागी, आलसी, ओछे अनुत्साही, अनुद्योगी,
पड़े दुर्दैव को कोसें, मरे जीते कहाते हैं।
पराये माल से मोधू, बने प्रारब्ध के पूरे,
मिलाते धूलि में पूँजी, कुकर्मों को कमाते हैं

दुराचारी, दुरारम्भी कुकर्मी कामिया व्यारी,
पमण्डी जार अन्यायी, कुर्मों को भी लजाते हैं।
हठीले ढीठ, अज्ञानी, निकम्मे मादकी, कामी
गपोड़े, दुर्गुणी, गुण्डे मतिभ्रम को बुलाते हैं।
कुचाली चोर, हत्यारे, विलासी धर्म-विद्रोही
प्रजा राजा किसीकी भी, न सत्ता में समाते हैं।
विचारी बालिकाओं को वृथा वैधव्य के द्वारा
घरों में जो रुलाते हैं, न वे लाते बचाते हैं।
गिराते गर्भ रांडों के विगोते जो अहिंसाको
गिरें वे काल-गंगा के प्रवाहों में न न्हाते हैं।
न पालें जो अनाथों को खिलाते माल संडों को
गड़े में पुण्य की ऊँची प्रथा को ले गिराते हैं।
किसी भी आततायी का कभी पीछा न छूटेगा
हरें जो प्राण औरों के गले वे भी कटाते हैं।
बचेंगे शंकरागामी दिनों में वे कुचालों से,
जिन्हें ये दम्भ के थोड़, नमूने भी डराते हैं।

अपौरुषेय वेद

(दोहा)

मंत्रा के मुनि योग से अर्थ विचार विचार।
करते हैं संसार मे वैदिक धर्म-प्रचार॥

(गीत)

उस अद्वैत वेद की महिमा,
ठौर-ठौर गुरुजन गाते हैं ॥

शब्द न जिस में नर-भाषा के, भाव न भ्रम की परिभाषा के,
लिखा न कल्पित लेख-प्रथा से, लौकिक लोग न पढ़ पाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥
जिस के मन्त्र विवेक बढ़ाते मोह-महीधर पै न चढ़ाते,
मेट अनर्थ, सदर्थ पसारें, ध्रुव—धर्मामृत बरसाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥
ज्ञान-योग बल से बुध बाँचे, कर्म-योग अनुभव से जाँचें,
विधि निषेध कर न्यारे न्यारे, क्रम से सब को समझाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं।
जो वैदिक उपदेश न होता, तो फिर कौन अमंगल खोता,
मनुज मान शिक्षा शंकर की, भव-सागर को तर जाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥

नैसर्गिक शिक्षा-निदर्शन

(दोहा)

व्यापक हैं संसार मे, विधि, निषेध विख्यात।
शिक्षा मानव जाति को, मिलती है दिन रात ॥

(शंकर छन्द)

जिसकी सत्ता भाँति-भाँति के भौतिक दृश्य दिखाती है।
जीवों को जीवन धारण के नाना नियम सिखाती है॥
सर्व नियन्ता सर्व हितैषी वह चेतन भुवनेश।
नैसर्गिक विधि से देता है, हम सब को उपदेश॥

[२]

न्यायशील शंकर जीवों से, कहिये क्या कुछ लेता है।
सुखदा सामग्री का सब को, दान दया कर देता है॥
सर्व सृष्टि रचना को देखो नयन सुमति के खोल।
ठौर-ठौर शिक्षा मिलती है गुरु-मुख से बिन मोल॥

[३]

देखो भानु भयंकर प्रतापी तम को मार भगाता है।
तेजहीन तारा मण्डल में, उज्ज्वल ज्योति जगाता है॥
ज्ञान उजाला बाँट रहा है यों प्रभु परम सुजान।
सन्त तेजधारी बनते हैं भ्रम-तम त्याग अजान

[४]

तारे भी तम-व्याप्त रात में दिव्य दृश्य दरसाते हैं।
चन्द्र बिम्बकी भाँति उजाला बाँट सुधा बरसाते हैं॥
यों अपने ज्ञानी पुरुषों से, पढ़ कर मंत्र प्रयोग।
ज्ञान अमिय सुख पाते हैं, गुरु-मुख लौकिक लोग॥

[५]

जो शिव से स्वाभाविक शिक्षा आदि क्रमागत पाते हैं।
सुगम साधनों से वे प्राणी जीवन-काल बिताते हैं॥

मानव जाति नहीं जीती है, इन मत के अनुसार।
साधन पाया हम लोगों ने, केवल विमल विचार॥

[६]

जो योगी जिस ज्ञेय वस्तु में, पूरी लगन लगाता है।
मर्म जान लेता है उस का, मनमाना फल पाता है॥
वह अपने आविष्कारों का, कर सब को उपदेश।
ठीक-ठीक समझा देता है, फिर फिर देश-विदेश॥

[७]

जो वड़भागी ब्रह्मज्ञान के, जितने टुकड़े पाते हैं।
वे सब साधारण लोगों को, देकर बोध बढाते हैं॥
तर्क-सिद्ध सद्भाव अनूठे, विधि-निषेधमय मत्र।
समह ग्रन्थाकार उन्हीं के, प्रकटे प्रचलित तत्र॥

[८]

लेख अनोखे, भाव अनूठे, अक्षर, शब्द, निराले हैं।
दुर्गम गूढ ब्रह्मविद्या के, विरले पढने वाले हैं॥
ज्ञानागार घने भरते हैं, विषय बटोर बटोर।
पाठकवृन्द नहीं पावेंगे, इति कर इस का छोर॥

[९]

तर्क-युक्तियों की पटुता से, जब जड़ता को खोते हैं।
सत्यशील वैदिक विद्या के, तब अधिकारी होते हैं॥
बाल ब्रह्मचारी पढ़ते है, सोच, समझ, सुन देख।
पाठ-प्रणाली जाँच लीजिये, पढ कतिपय उल्लेख॥

[१०]

जन्म-काल में जिस के द्वारा, जननी का पय पीते थे।
साथ वही साधन जाते थे इतर गुणों से रीते थे॥
ज्ञान-योग से गुरु लोगों के, उमगे विशद विचार।
कर्मयोगबल से पाते हैं, तब तब के फल चार॥

[११]

जाँच कीजिये जितने प्राणी जो कुछ बोला करते हैं।
वे उस भाँति मनोभावों की खिड़की खोला करते हैं॥
स्वाभाविक भाषा का हम को मिला न प्रचुर प्रसाद।
शब्द पराये बोल रहे हैं कर वर्णिक अनुवाद॥

[१२]

अपने कानों में ध्वनि रूपी जितने शब्द समाते हैं।
मुख से उन्हें निकालें तो वे वर्ण-रूप बन जाते हैं॥
वही अक्षर कहलाते हैं स्वर व्यञ्जन-समुदाय।
यों आकाश बना भाषा का कारण सहित उपाय॥

[१३]

जिनके स्वाभाविक शब्दों को पास दूर सुन पाते हैं।
वे अनुभूत हमारे सारे, अर्थ समझ में आते हैं॥
यों शिव से भाषा रचने का सुनकर वर उपाय।
कल्पित शब्द साथ भावों के, समुचित किये मिलाय॥

[१४]

भूतों के गुण और मूल यों धराक वर्णों का जाना है।
इन में जो प्रत्यक्ष शेष को अटकल ही से माना है॥

(८)

अटके डिगरीदार, दया कर दाम न छोड़े।
छीन लिये धन-धाम, ग्राम अभिराम न छोड़े॥
बासन बचा न एक, विभूषण-वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि, पुलिस ने शस्त्र न छोड़े॥

(९)

न्याय-सदन में जाय, दरिद्र कहाय चुका हूँ।
सच देकर इन्सालवेण्ट पद पाय चुका हूँ॥
अपने घर की आप, विभूति उड़ाय चुका हूँ।
पर संकट से हाय, न पिण्ड छुड़ाय चुका हूँ॥

(१०)

बैठ रहे मुख मोड़, निरन्तर आने वाले।
सुनते नहीं प्रणाम, लूट कर खाने वाले॥
उगल रहे दुर्वाद, बड़ाई करने वाले।
लड़ते हैं बिन बात, अड़ी पै मरने वाले॥

(११)

कविता सुने न लोग, न नामी कवि कहते हैं।
अब न विज्ञ, विज्ञान, व्योम का रवि कहते हैं॥
धर्म-धुरन्धर धीर, न बन्दीजन कहते हैं।
मुझ को सब कंगाल, धनी निर्धन कहते हैं॥

(१२)

हाय ! विरद विख्यात आज विपरीत हुआ है।
मन विहङ्ग निरशंक, महा भयभीत हुआ है॥
कुल दरिद्र की मार, सबै रस भङ्ग हुआ है।
जीवन का मग देख सशंकित अङ्ग हुआ है॥

(१३)

प्रतिभा को प्रतिघात, मनचय पछाड़ चुका है।
आदर को अपमान कलंक लताड़ चुका है॥
पौरुष का सिर चीर निरुपम फोड़ चुका है।
विपद दर्प का दम्भ, विराग विमोह चुका है॥

(१४)

हरसे देश उदास जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास मित्र सुख मूल नहीं है॥
अनुचित व्यवहार करें कुछ मेल नहीं है।
रूँठ रहे सब लोग, सुमति का खेल नहीं है॥

(१५)

मंगल का रिपु मार, अमङ्गल घेर रहा है।
विषम त्रास के बीज विनाश बखेर रहा है॥
दीन-मलीन कुटुम्ब कुमति को कोस रहा है।
सब के कण्ठ अरण्य दरिद्र मसोस रहा है॥

(१६)

दुखड़ों की भरमार, यहाँ सुख-साज नहीं है।
किस का गोरस-भात, मुठीभर नाज नहीं है॥
भटकें चिथड़े धार, धुला पट पास नहीं है।
कुनवे-भर मे कौन, अधीर उदास नहीं है॥

(१७)

मक्की, मटरा, मौठ, भुनाय चना लेते हैं।
अथवा रूखे रोट, नमक से खा लेते हैं॥
सत्तू, दलिया, दाल, पेट में भर लेते हैं।
गाजर, मूली पाय, कलेवा कर लेते हैं॥

(१८)

बालक चोखे खान, पान को अड़ जाते हैं।
खेल-खिलौने देख, पिछाड़ी पड जाते हैं॥
वे मनमानी वस्तु, न पाकर रो जाते हैं।
हाय हमारे लाल, सुबकते सो जाते हैं॥

(१९)

सिर से सकट-भार, उतार न लेगा कोई।
मुझ को एक छदाम, उधार न देगा कोई॥
करुणा सागर वीर, कृपा न करेगा कोई।
हम दुखियों के पेट, न हाय भरेगा कोई॥

(२०)

फूल-फूल कर फूल फली-फल खाने वाले।
व्यञ्जन पाक प्रसाद, यथारुचि पाने वाले ॥
गोरस, आदि अनेक पुष्ट रस पीने वाले।
हाय हुए हम शाक पत्तों पर जीने वाले ॥

(२१)

घर में कुरते कोट, सलूके सिल जाते हैं।
बजरंग के दो चार, टके जो मिल जाते हैं ॥
जब कुछ पैसे हाथ शाम तक आ जाते हैं।
तब उनका सामान मँगा कर खा जाते हैं ॥

(२२)

लड़के लकड़ी बीन बीन कर ला देते हैं।
ईंधन-भर का काम, अवश्य चला देते हैं ॥
भूख चना बस ओस पत्तों से भर देते हैं।
माँग-माँग कर छाछ, महेरी कर लेते हैं ॥

(२३)

ठाकुरजी का ठौर, मँगेजू माँग लिया है।
छोटा-सा तिरपाल पुराना टाँग लिया है ॥
गूदड़ सारे बेच उधारा चुका दिया है।
केवल कोठा एक, गुजारा इसा किया है ॥

(२४)

छप्पर में बिन बाँस, घुने एरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम, घड़ों के खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ दस-बीस, फटे से टाट पड़े हैं।
चकिया की भिड़ फोड़, पटीले पाट पड़े हैं॥

(२५)

सरदी का प्रतियोग, न उष्ण विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार, न शीतल वास मिलेगा॥
घेर रही बरसात, न उत्तम ठौर मिलेगा।
हा! खँडहर को छोड़, कहाँ घर और मिलेगा॥

(२६)

बादल केहरि-नाद, सुनाते बरस रहे हैं।
चहुँ दिस विद्युद्दृश्य, दौड़ते दरस रहे हैं॥
निगल छत्त के छेद, कीच-जल छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेव गढ़ घोर, प्रलय का तोड़ रहे हैं॥

(२७)

दिया जले किस भाँति, तेल को दाम नहीं है।
अटके मच्छर-डाँस, कहीं आराम नहीं है॥
फिसल पड़े दीवार, यहाँ सन्देह नहीं है।
कर दे पतियाँहाल नहीं तो मेह नहीं है॥

(२८)

बीत गई अब रात महा तम दूर हुआ है।
संकट का कुल हाय न चकनाचूर हुआ है॥
आज भयंकर रुद्र रूप उपहास हुआ है।
हा! हम सबका घोर नरक में वास हुआ है॥

(२९)

लड़ते हैं मत-पन्थ परस्पर मेल नहीं है।
सत्य सनातन धर्म कपट का खेल नहीं है॥
सुगुण साधु-सत्कार, कहीं अवशिष्ट नहीं है।
ठगियों में मिल मात्र वञ्चना इष्ट नहीं है॥

(३)

जैसे भारत-भक्त कर्मधारी मिस्टर हैं।
थानेदार, वकील डाक्टर बैरिस्टर हैं॥
वैसे धन की भाँति प्रतिष्ठा पा सकते हैं।
क्या वो मुफ्त-से रह, कमाई खा सकते हैं।

(३१)

वैदिक दल में धान नाम कुछ भी न मिलेगा।
पीन पाप प्रतिवार हवन को घी न मिलेगा॥
मुनि-महिमागार महा गौरव न मिलेगा।
भोजन वस्त्र समेत, गया वैभव न मिलेगा॥

(३२)

वपतिस्मा सकुटुम्ब, विशप से ले सकता हूँ।
धन्यवाद प्रभु गॉड, तनय को दे सकता हूँ॥
धन गौरव-सम्पन्न, पुरोहित हो सकता हूँ।
पर क्या अपना धर्म, पेट पर खो सकता हूँ॥

(३३)

सामाजिक बल पाय, फूल-सा खिल सकता हूँ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल सकता हूँ॥
शुद्ध सनातनधर्म, ध्यान में धर सकता हूँ।
हा! विन भोजन-वस्त्र, कहो क्या कर सकता हूँ॥

(३४)

देश-भक्ति का पुण्य, प्रसाद पचा सकता हूँ।
विज्ञापन मे दाम, कमाय बचा सकता हूँ॥
लोलुप लीला भाँति, भाँति की रच सकता हूँ।
फिर क्या मैं कापट्य, पाप से बच सकता हूँ॥

(३५)

जो जगती पर बीज, पाप के बो न सकेगा।
जिस का सत्य विचार, धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि के विपरीत, कुचाली हो न सकेगा।
वह कंगाल कुलीन, सदा यों रो न सकेगा॥

(३)

लपकें लट लूँ लहराती हैं, जल-तरङ्ग-सी थहराती हैं।
तृपित कुरङ्ग वहाँ आते हैं, पर न बूँद वन की पाते हैं॥
सूख गई सुखदा हरियाली, हा! रस हीन रसा कर डाली।
कुतल जवासों के न जले हैं, फूल-फूल कर आक फले हैं॥

(४)

पावक-बाण दिवाकर मारे, हा! बडवानल फूँक पजारे।
खौल उठे नद, सागर सारे, जलते हैं जलजन्तु बिचारे॥
भानु-कृपा न कढ़े वसुधा से, चन्द्र न शीतल करे सुधा से।
धूप हुताशन से क्या कम है, हाय! चाँदनी रात गरम है॥

(५)

जगल गरमी से गरमाया, मिलती कहीं न शीतल छाया।
घमस घुसी तरु-पुंजों में भी, निकले भबक निकुंजों में भी॥
सुन्दर वन, आराम घने हैं, परम रम्य प्रासाद बने हैं।
सब म उष्ण ब्यार वहती है, घाम, घमस घेरे रहती है॥

(६)

फलने को तरु फूल रहे हैं, पकने को फल झूल रहे हैं।
पर जब घोर घर्म पाते हैं, सब के सब मुरझा जाते हैं॥
हरि-मृग प्यासे पास खड़े हैं, भूले नकुल-भुजग पड़े हैं।
कङ्क, शचान, कबूतर, तोते, निरखे एक पेड़ पर सोते॥

(७)

विधि, यदि बापी कूप न होते तो क्या हम सब जीवन लाते।
पर पानी इन में भी कम है, अब क्या करें नाक में दम है॥
कभी-कभी घन इधर आता है कृपालु रवि छुपजाता है।
जो जल बादल से झड़ता है, तो कुछ काल चैन पड़ता है॥

(८)

हरित बलि पौधे मन भाये बैंगन, काशीफल, फल पाये।
खरबूजे तरबूज ककड़ी सब ने टाँग पित्त की पकड़ी॥
इमली के बिटु-भाव कटारे आम चपल सुकार गुजारे।
सरस फालसा स्यामल गाते य सब से सुख-साधन जाते॥

(९)

व्यंजन मोदक आदि हमारे पेट न भर सकते हैं सारे।
गरम रहें जो कम खाते हैं, रखते तो घम घुस जाते हैं॥
चन्दन में घनसार मिलाया पाटल-पुष्प-पराग मिलाया।
ऐसा कर परिणाम बनाये, वे भी बसन विदाहक पाये॥

(१)

दीपक-ज्योति जहाँ जगती है, चमक चंचला-सी लगती है।
व्याकुल हम न कहीं जाते हैं आकर क्या कुछ कर पाते हैं॥
ग्राम-ग्राम प्रत्येक नगर में घूमें घोर ताप घर-घर में।
दर-रोष-दिनकर के मारे तड़प रहे नर-नारी सारे॥

(११)

भीतर-बाहर से जलते हैं, अकुलाकर पखे झलते हैं।
स्वेद बहे तन डूब रहे हैं, घबराते मन ऊब रहे हैं॥
काल पड़ा नगरों में जलका, मोल मिले उष्णोदक नल का।
वह भी कुछ घण्टों बिकता है, आगे तनक नहीं टिकता है॥

(१२)

पान करें पाचक जल,जीरा, चखते रहें फुलाय कतीरा।
बरफ गलाय छने ठडाई, औषधि पर न प्यास की पाई॥
बँगलों में परदे खस के हैं, बार-बार रम के चसके हैं।
सुखिया सुख-साधन पाते हैं, इतने पर भी अकुलाते हैं॥

(१३)

अकुला कर राजे महाराजे, गिरि-शृङ्गों पर जाय विराजे।
धूलि उडाय प्रजा के धन की, रक्षा करते हैं तन-मन की॥
जितने वकुला बैरिस्टर हैं, वीर-बहादुर हैं मिस्टर हैं।
सुख मे कमरों में रहते हैं, गरजें तो गरमी सहते हैं॥

(१४)

गोरे गुरुजन भोग-विलासी, बहुधा बने हिमालय वासी।
कातिक तक न यहाँ न आते हैं, वहीं प्रचुर वेतन पाते हैं॥
निर्धन घबराते रहते हैं, घोर ताप सकट सहते हैं।
दिन भर मुड़ बोझे ढोते हैं, तब कुछ खा पीकर सोते हैं॥

(१५)

लढ़ियाओं पर दायें चलाना, फिर अनाज-भूसा बरसाना।
पूरा तप किसान करते हैं तो भी बगर नहीं मरते हैं॥
हलवाई मुरली, मनिहारे तेली भगत, सुनार लुहारे।
नेक न गर्मी से डरते हैं अपने तन फूँका करते हैं॥

(१६)

हा! चौपसार की आग पजारे झपटे झपट लपट की मारे।
बलती भूभल फोंक रहे हैं, जलते ईंधन झोंक रहे हैं॥
मातु-ताप तपावे जिसको, वह ज्वाला न जलावे किसको।
व्याकुल जीव-समूह निहारे, हाय! दुःताप से सब हारे॥

(१७)

जेठ जगत को जीत रहा है, काल विनाशक बीत रहा है।
भभक भभूके मार रहे हैं हाय! हाय! हम हार रहे हैं॥
पावक-वायु प्रचण्ड चले हैं पल्लव-राज भी बहुत जले हैं।
पावस को अवलोक रहे हैं, गरमी की गति रोक रहे हैं॥

(१८)

जब दिन पावस के आवेंगे वारि बलाहक बरसावेंगे।
तब गरमी नरमी पावेगी कुछ तो ठण्डक पड़ जावेगी॥
आठ बने कालानल-रवि का ऐसा साहस है किस कवि का।
शंकर कविता हुई न पूरी जलती भुनती रही अधूरी॥

दिवाली नहीं दिवाला है

(दोहा)

दिया दिवाली का जला, निरख दिवाला काढ ।
होली धूलि प्रपच में, परख पच की वाढ ॥

(सुभद्रा छन्द)

हुआ दिवस का अन्त, अस्त आदित्य उजाला है ।
असित अमा की रात, मन्द आभा उडु-माला है ॥
चन्द्र-मण्डल भी काला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

घोर तिमिर ने घेर, रतौंधा-रङ्ग जमाया है ।
अन्ध अकड में तेज, हीन अन्धेर समाया है ॥
न अगुआ आँखों वाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उड़ते फिरें उलूक, उजाड़ू गीदड़ रोते हैं ।
विचरें वचक चोर, पड़े घरवाले सोते हैं ॥
न किस का टूटा ताला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उमग मोहिनी शक्ति, सुरों को सुधा पिलाती है ।
असुरों को विप-रूप, रसीले खेल खिलाती है ॥
झुका अँखियों का झाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

सुन शावरकी शाह, बिसात छुटी क्या खोता है।
रहे न फील वजीर, न प्यादे बचे न घोड़ा है॥
न बँगी ऊँट जुगाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सज्जन सभ्य, सुजान दरिद्र न पूछे जाते हैं।
हा! मद-मत्त अजान प्रतिष्ठा-पदवी पाते हैं॥
सबक गम्मी का साला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

गरमी से अकुलाय महा प्राणी गरमाते हैं।
सरदी से सकुचाय नहीं नेता भरमाते हैं॥
परेश भेद बताता है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

मतवाले मत-पन्थ ममाते भाषा लड़ते हैं।
बैर-विरोध बढ़ाय गर्ध-गड्ढे में पड़ते हैं॥
अविद्या ने घर घाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

जिनके अर्थ अनेक खरे-खोटे हो सकते हैं।
क्या वे अखिल कुग्रंथ परा विद्या हो सकते हैं॥
कुमति-सुता का जाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

सबल बड़ों के चूट, बडाई कहाँ न पाते हैं।
वैदिक दर्प दबोच, वेदियों पर चढ जाते हैं॥
हुआ धी नाम उछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गुरुकुलियों को दान, अकिंचन भी दे आते हैं।
पर कंगाल-कुमार, न विद्या पढने पाते हैं॥
धनी लड़कों की शाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

जननी-पितु की पुत्र, न पूरी पूजा करता है।
अपने ही रस-रङ्ग, भरे भोगों पै मरता है॥
सुमित्रा वनिता वाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ललना ज्ञान विहीन, अविधा से दुख पाती हैं।
हा! हा! नरक समान, घरों में जन्म बिताती हैं॥
महा माया विकराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

बाधक बाल-विवाह, कुमारों का बल खोता है।
अमर कुलों में हाय, वंश-घाती विष बोता है॥
बुरा काकोदर पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

अक्षत-योनि अनेक बालिका विधवा होती हैं।
पामर पंडित पंच पिशाचों को सब रोती हैं॥
न गौना हुआ न ब्याहा है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

रपटा मदन-विलास मलीनों को दिखलाती हैं।
करती हैं व्यभिचार अधूरे गर्भ गिराती हैं॥
अछूता धर्म छिनाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

केश-कल्प कर वृद्ध, बालिका कन्या वरते हैं।
कर मनमाने पाप न अत्याचारी डरते हैं॥
जरा जारत्व निराला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

राजा वणिक उदार, मस्त जीने पै मरते हैं।
गोरे गुरु अपमान मरोसा पूजा करते हैं॥
यही तो मान-मसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ठोस ठसक के ठाठ, ठिकानों पै यों लगते हैं।
उनको लोक दिखाय पढ़े पाखण्डी ठगते हैं॥
बहार जिनकी चाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

(४०)

काढ काँप विकराल, सबल शूकर आते हैं।
खोद-खोद कर खेत, गाँठ-गुडहर खाते हैं॥
जो इनके दृढ तुण्ड, न भूतल मुण्ड उडाते।
तो कुलवीर किसान, कभी हल जोत न पाते॥

(४१)

फूल, फले, वन, बाग, सरस हरियाली छाई।
वसुधा ने भरपूर, सस्यमय सम्पति पाई॥
उद्यम की जड़ मुख्य, जगत-जीवन खेती है।
एक बीज उपजाय, बहुत-से कर देती है॥

(४२)

बेलि, लता, तरु, गुल्म, पसारें छदन छबीले।
पल्लव लटकें फूल, फली, फल धार फबीले॥
जो हम को करतार, न सुन्दर दृश्य दिखाता।
तो कृत्रिम फुलवाड़, विरचना कौन सिखाता॥

(४३)

उपजे छत्रक-पुञ्ज, सुकोमल श्वेत सुहाये।
इन्द्रफलक पद पाय, कुकुरमुत्ता कहलाये॥
यदि इन के आकार, गुणी जन देख न पाते।
तो फिर छतरी, छत्र, कहो किस भाँति बनाते॥

(४४)

मूल, दण्ड, दल, गोंद, फूल, फल, सार, रसीले।
बीज, तेल, तृण, तूल, गन्ध, रँग, काठ कसीले॥

करते हैं दिन-रात, दान प्रिय पादप सारे।
सीखे परउपकार, इन्हीं से सुहृद हमारे॥

(४५)

जिन की घोर पुकार सदा सब सुन पाते हैं।
वे जिन जीव सजीव सकल समझे जाते हैं॥
यदि स्वाभाविक शब्द अर्थ अपने न बताते।
कल्पित भाषण तो न, मनोगत भाव जताते॥

(४६)

कूक गया अब कौंस जरा पावस पर छाई।
जलदों ने जब धाप कूक की गरज सुनाई॥
क्या प्रकार असंख्य तृण जन भर जाते हैं।
विरले मन की भाँति सर्वहित कर जाते हैं॥

(४७)

अब जो जितना भाव जाँच कर जान लिया है।
क्या अनुभव का अस्त्र वही बस मान लिया है॥
जहाँ-जहाँ जिस भाँति सुमति की उन्नति होगी।
तदनुसार उद्योग, करेंगे गुरुजन योगी॥

(४८)

अमित ज्ञान की कौन इतिश्री कर सकता है।
सागर गागर में न, कभी भी भर सकता है॥
जिन को सत्य प्रकाश, मिला है शिव सविता से।
उन का अनुसन्धान, बढ़ेगा इस कविता से॥

सगुण ब्रह्म

(दोहा)

ब्रह्म सच्चिदानन्द का, देखा सबल स्वरूप।
शकर तू भी होगया, परम रङ्क से भूप॥

(षट्पदी छन्द)

प्रकटे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध धार तू।
सर्व, सर्वसघात, ख, मारुत, अग्नि, आप, भू॥
शुद्ध सच्चिदानन्द, विश्वव्यापक, बहुरगी।
मन, दिगात्मा, काल, सत्त्व, रज, तम का सगी॥
हे अद्वितीय, तू एक ही, अविचल चले अनेक में।
यों पाया शकर को तुही, शकर विमल विवेक में॥

(सोरठा)

समझा चेतन और, जान लिया जड और है।
युगल एक ही ठौर, दरसें भिन्न, अभिन्न-से॥

प्रपंच-पंचक

(दोहा)

माया मायिक ब्रह्म की, उमगी गुण विस्तार।
ठोस, पोल के मेल में, विचरे खेल पसार॥ १॥
देश, काल की कल्पना, ज्ञान, क्रिया बल पाय।
जागी जगदम्बा अजा, नाम, रूप अपनाय॥ २॥

इन्द्र, इन्द्रियों से हुआ तन का मन का मेल।
भूत भव सा भाँति के छिन भिन्न खेलें खेल ॥ ३ ॥
साधन पाया जीव ने, मन द्रुतगामी दूत।
सारहीन संसार है उस का ही अनुभूत ॥ ४ ॥
भर जाते हैं स्वप्न में जाग्रत के सब रंग।
पाय गाढ़ निद्रा रहे, चेतन एक असंग ॥ ५ ॥

हिरण्यगर्भ

(दोहा)

तू सब का स्वामी बना, सेवक हैं हम लोग।
साथ[1] न छूटेगा कभी, यह स्वाभाविक योग ॥

(भजन)

सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
तेरी परम शुद्ध सत्ता में मन का विराट बसेरा है।
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
केवल नर पशु तेरा ने घटक प्रकृति का घेरा है ॥
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
तू सर्वस्व सकल जीवों का किस पर प्यार न तेरा है।
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
दीनबन्धु तेरी प्रभुता का बलमति शंकर चेरा है ॥
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥

सत्य विश्वास

(दोहा)

तेरी शुभ सत्ता विना, हे प्रभु मंगल-मूल ।
पत्ता भी हिलता नहीं, खिलता कहीं न फूल ॥

(भजन)

जिस में तेरा नहीं विकास,
वैसा विकसा फूल नहीं है ॥

मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ सा मिला न कोई और,
पाया तू सब का सिरमौर, प्यारे इसमें भूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

तेरे किंकर करुणाकन्द, पाते हैं अविरल आनन्द,
तुझ से भिन्न सच्चिदानन्द, कोई मंगलमूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

प्रेमी भक्त प्रमाद बिसार, माँगें मुक्ति पुकार-पुकार,
सब का होगा सर्व सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

जिन को मिला बोध विश्राम, जीवनमुक्त बने निष्काम,
उन को है शंकर श्रीधाम, तेरा न्याय त्रिशूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

विनय

(दोहा)

प्यारे तू मन में बसे तुझ में तन का वास।
धन हमारा है तुही हम सब तेरे दास॥

(छन्दगान्धक रागनीत)

विधाता तू हमारा है तुही विश्राम दाता है।
बिना तेरी दया कोई नहीं आनन्द पाता है॥
तितिक्षा की कसौटी से जिसे तू जाँच लेता है।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है॥
सताता जो न औरों को न धोखा आप खाता है।
वही सद्भक्त है तेरा सदाचारी कहाता है॥
सदा जो न्याय का प्यारी प्रजा को दान देता है।
महाराजा! उसी को तू बड़ा राजा बनाता है॥
तजे जो धर्म का प्यारा कुकर्मों को बढ़ाता है।
न ऐसे नीच पापी को कभी ऊँचा चढ़ाता है॥
स्वयंभू शंकरानन्दी तुझे जो जान जाता है।
वही कैवल्य सत्ता की महत्ता में समाता है॥

जिज्ञासु की जिज्ञासा

(दोहा)

जो मुझ से न्यारा नहीं जिस का निरन्तर साथ।
हा! वह विद्या के बिना अबलौं लगा न हाथ॥

(गीत)

प्रभु रहता है पास,
हा पर हाथ न आवे ॥
प्राणों से भी अति प्यारा, होता है कभी न न्यारा,
मुझ में करे निवास, भीतर बाहर पावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
स्वामी स्वाभाविक सङ्गी, अङ्गों में टिका अनङ्गी,
अस्थिर भोग विलास, रोचक रचे रिझावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
जो दोष देख लेता है, तो उग्र दण्ड देता है,
उपजावे भय-त्रास, ताँस-ताँस तरसावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
मेरे उद्योग न रोके, कर्मों को सदा विलोके,
मन में करे विकास, शङ्कर खेल खिलावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥

युगल विलास

(षट्पदी छन्द)

मन के हर्ष, विषाद, करें मोटा, कृश तन को ।
तन के रोग, विकास, दु ख सुख देते मन को ॥
ज्ञान, क्रिया उपजाय, फुरें चेतनता, जड़ता ।
इनका [illegible] भेद निराला [illegible] ॥

अद्वैत सर्व संघात के पुरुष प्रकृति दो नाम हैं।
कूटस्थ शंकरानन्द में सब मायिक परिणाम हैं॥

जवाबे एज़दी

(दोहा)

मत वालों का मत का मिलना है दुशवार।
क्या समझावेंगे उन्हें, शंकर के अवतार॥

(ग़ज़ल)

हर शाख़ से अयाँ है हर सू जमाल तेरा।
माशूक़े बुलबुलों है ये गुल जमाल तेरा॥
ज़ाहिर न देखता है इन्साफ़ की नज़र से।
मज़्कूर दिखा रहे हैं, कामिल कमाल तेरा॥
क़ायम बना रहा है तसलीम की सिपारी।
ज़ाहिर मुसल्लमा है, दिल बेमिसाल तेरा॥
मख़लूक़ मानता है, मख़लूक़ में ख़ुदा को।
मुश्ताक़े मारिफ़त है, क़ाबिल ख़याल तेरा॥
अल्लाह का अक़ीदा ज़ाहिर करें कहाँ से।
इस्लाम हल न होगा क्या यह सुआल तेरा॥
ये कौल कर रहा है गुमराह आशिक़ों को।
शैतान इस नदी में अब जाय जाल तेरा॥

गारत नहीं करेगा, उसको जहाने-फानी ।
शंकर नसीब होगा, जिसको विसाल तेरा ॥

सच्ची सूचना

(दोहा)

खोल खिलौने खोगले, खेल पसार न खेल ।
प्रेमामृत पीले सखा, शंकर से कर मेल ॥

(सुन्दरात्मक राजगीत)

वह पास ही खड़ा है, पर दूर मानता है ।
किस भूल में पड़ा है, कुछ भी न जानता है ॥
हठवाद में हठीले, हरि का न मेल होगा ।
छल की कहानियों को, बस क्यों बखानता है ॥
सुनते कुराग तेरे, अब कान वे नहीं हैं ।
फिर तान बेतुकी को, किस हेतु तानता है ॥
जगदीश को भुलाया, जड़ का बना पुजारी ।
समझा पिसान पाया, पर धूलि छानता है ॥
लड़ती लड़ा रही है, अविवेकता मतों की ।
पशुता प्रमाद ही से, उसकी समानता है ॥
छलिया छुपा रहा है, अपनी अजानकारी ।
इस दम्भ की प्रथा में, भ्रम की प्रधानता है ॥
जिस वेद का सदा से, उपदेश हो रहा है ।
उसके विचारने का, प्रण क्यों न ठानता है ॥

कवि शंकरादि न थी जिसका न अन्त पाया।
उस ब्रह्म से निराली कुछ भी न मानता है।

उपासना पञ्चक

(दोहा)

एक महत्ता में मिला तुमको मुझको वास।
मेरी भाँति करे नहीं पर तू भोग-विलास॥

(भुजङ्गप्रयातात्मक [illegible])

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है।
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है॥
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा।
किसी काल में नाश मेरा न होगा॥
निराली भुला खेल तेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥१॥
अजा को अकेली न तू छोड़ता है।
मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है॥
न तू भोग भोगा बना विरत योगी।
किया कर्मयोगी मुझे भोग-भोगी॥
निराला न तेरा बसेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥२॥
निराकार आकार तेरा नहीं है।
किसी भाँति का मान मेरा नहीं है॥

सखा सर्व सघात से तू बड़ा है ।
मुझे तुच्छता में समाना पडा है ।।
उजाला रहेगा अँधेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ।।३।।
अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा ।
न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा ।।
न त्यागे तुझे शक्ति सर्वज्ञता की ।
लगी है मुझे व्याधि अल्पज्ञता की ।।
दुई का घटाटोप घेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ।।४।।
तुझे वन्ध-बाधा सताती नहीं है ।
मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है ।।
प्रभो शकरानन्द आनन्द-दाता ।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता ।।
दया-दान का दीन चेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ।।५।।

आरती

(दोहा)

भानु, चन्द्र, तारे, शिखी, चपला, उलका, पात* ।
शकर तेरी आरती, करते हैं दिन रात ।।

---

* पात = ध्रुवज्यो[illegible]

(मानस मराल छन्द)

जय शंकर स्वामी
जय श्रीशंकर स्वामी।
अविचल अन्तर्यामी एक अपरिणामी ॥
जय शंकर स्वामी ॥
मङ्गलमूल महत्ता अतुलित श्रीमत्ता।
सत्य सनातन सत्ता, अजरामर अत्ता ॥
जय शंकर स्वामी ॥
व्यापक विश्व-विहारी अव्यय, अविकारी।
मुक्त महाव्रत धारी जन संकट हारी ॥
जय शंकर स्वामी ॥
लोचनहीन निहारे, मुख बिन उच्चारे।
बिन मस्तिष्क विचारे विभु या गुण धारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥
रच-रच न्यारे-न्यारे, भुवन भानु तारे।
तैजस पिण्ड पसारे, चमकें शशि तारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥
जल की सीख उड़ावे बादल बरसावे।
अन्नादिक उपजावे जगपुष्टि पावे ॥
जय शंकर स्वामी ॥
प्रकृति जीव का जोड़ फिर पलट मोड़।
प्यार निभाय न छोड़ नाता न बिच तोड़ ॥

जय शकर स्वामी ॥
अखिलाधार विधाता, सुख-जीवन दाता ।
मित्र, बन्धु, गुरु, त्राता, परम पिता, माता ॥
जय शकर स्वामी ॥
विरचे भोग अभोगी, सब के उपयोगी ।
कर्मविपाक वियोगी, अनघ, अनुद्योगी ॥
जय शकर स्वामी ॥
कपट-जाल से छूटें, छल के गढ़ टूटें ।
लपठ, लबार न लूटें, भ्रम के मठ फूटें ॥
जय शकर स्वामी ॥
ललना जन्म न खोवें, कुल-विदुषी होवें ।
हा, कुलटा न विगोवें, राँड न दुख रोवें ॥
जय शकर स्वामी ॥
बालक ऊत न ऊलें, वीर न बल भूलें ।
वश-कल्पतरु फूलें, जीवन-फल झूलें ॥
जय शकर स्वामी ॥
सुख भोगें हम सारे, सब सब के प्यारे ।
जियें प्रजेश हमारे, कुल पालन हारे ॥
जय शकर स्वामी ॥
वैर; विरोध विसारें, वैदिक व्रत धारें ।
धर्म सुकर्म प्रचारें, परहित विस्तारें ॥
जय शकर स्वामी ॥

सामाजिक बल पावें पर को अपनावें ।
सभ्य, सुजान कहावें प्रभु के गुण गावें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

धर्मजिज्ञासा

(गीत)

हे जगदीश देव मन मेरा
सत्य सनातन धर्म न छोड़े ॥
सुख में तुमको भूल न जावे मोह न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे तमक न तार क्षमा का तोड़े ।
हे ज दे म मे स स० ध न छोड़े ॥
त्याग जीव के जीवन-धन को देखा होंक न दे तन रथ को
अति चंचल इन्द्रिय घोड़ों की, भ्रम से रपटी बाग न मोड़े ।
हे ज दे म० मे स स ध न छोड़े ॥
होकर शुद्ध महाव्रत धारे मलिन किसी का मान न मारे
धार घमण्ड क्रोध-पावक से हा ! न प्रेम-रस का घट फोड़े ।
हे ज दे म मे स स ध न छोड़े ॥
देख विमल विचार बढ़ावे तप से आत्मिक ज्ञान बढ़ावे
हठ तज मान करे विद्या का शंकर श्रुति का सार निचोड़े ।
हे ज दे म मे स० स ध न छोड़े ॥

महा मनोरथ

(दोहा)

तन, मन, वाणी, आत्मा, बुद्धि, चरित्र, पवित्र ।
जो कर लेता है वही, परम मित्र का मित्र ॥

(भजन)

हितकारी तुम सा नाथ,
न अपना और कहीं कोई ॥

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि मलीन ज्ञान-गङ्गा में, बार-बार धोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

ज्वलित ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म सुधार मोह की माया, खोज-खोज खोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

मार तपोबल के अङ्गारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना, भाव भूल भोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

शङ्कर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीनदयालु इसीसे मैंने, प्रेम-बेलि बोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

———

सामाजिक बल पावें यश को अपनावें ।
सभ्य सुबोध कहावें प्रभु के गुण गावें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

धर्मजिज्ञासा

(गीत)

हे जगदीश देव मन मेरा
सत्य सनातन धर्म न छोड़े ॥
सुख में तुझको भूल न जावे मेक न संकट में घबरावे,
धीर कदाप अधीर न होवे तमक न वार क्षमा का तोड़े ।
हे ज दे म मे स स ध न छोड़े ॥
त्याग जीव के जीवन-पथ का टेढ़ा हाँक न दे तन रथ का
अति चञ्चल इन्द्रिय घाड़ों की, भ्रम से बलारी बाग न मोड़े ।
हे ज दे म मे० स स ध न छोड़े ॥
होकर शुद्ध महाव्रत धारे मलिन किसी का माल न मारे,
धार धमण्ड क्रोध-पाहन से हा ! न प्रेम-रस का घट फोड़े ।
हे ज० दे म मे स स ध न छोड़े ॥
ऊँचे विमल विचार बढ़ावे तप से मानिस ज्ञान बढ़ावे
हठ तज मान करे विद्या का, शंकर श्रुति का सार निचोड़े ।
हे ज दे म मे स स ध० न छोड़े ॥

महा मनोरथ

(दोहा)

तन, मन, वाणी, आत्मा, बुद्धि, चरित्र, पवित्र ।
जो कर लेता है वही, परम मित्र का मित्र ॥

(भजन)

हितकारी तुझ सा नाथ,
न अपना और कहीं कोई ॥

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि मलीन ज्ञान-गङ्गा में, बार-बार धोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

ज्वलित ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म सुधार मोह की माया, खोज-खोज खोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

मार तपोबल के अङ्गारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना, भाव भूल भोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

शङ्कर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीनदयालु इसीसे मैंने, प्रेम-बेलि बोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

———

कृपाभिलाषी

(दोहा)

तारक तेरा नाम है ओ शंकर भगवान।
तो हमको भी तारदे छोड़ न अपनी बान॥

(गीत)

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

मेघ महा भ्रम के उड़ जावें तर्क-पवन के मारे,
दिव्य ज्ञान-दिनकर के आगे, छिपें न दुर्मति-तारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

वैदिक सिद्ध सुधारें हम को छूटें अवगुण सारे
न्याय नीति बसमें अपनावें हमको मित्र हमारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

रहें न सब वैरी परदेशी मुक्त-समाज से न्यारे,
डूब मरें संकट-सागर में पवित्र प्रेम हमारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

अबतो सुन पुकार पुत्रों की हे पितु पालन हारे
शंकर क्या हम से बहुतेरे, अधम नहीं क्या तारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

पाँच पिशाच

(दोहा)

शोणित पीते हैं सदा, अटके पाँच पिशाच।
पाँचों में मुखिया बना, प्रबल पञ्च नाराच॥

(गीत)

पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से, हा किस के तन-मन रीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
पूरे रिपु चेतन-कुरङ्ग के, हरि, वृक, भालु, बाघ, चीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
छूटे न इन से पिण्ड हमारे, अगणित जन्म वृथा बीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
शंकर वीर वलिष्ट वही है, जिस ने ये प्रतिभट जीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥

व्याकुल-विलाप

(दोहा)

घेर रहे छोड़ें नहीं, अटके पाप कठोर।
दीनानाथ निहार तू, मुझ व्याकुल की ओर॥

(गीत)

हे प्रभु मेरी ओर निहार ।

एक अविद्या का भटका है, पचरंगी परिवार,
मेल मिलाप पपणा तीनों, करतो हैं कुविचार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥

काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार
जीवन-वृक्ष बसाया सूखा पौरुष-पाक-पसार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥

घेर रहे वैरी विषयों के बन्धन रूप विकार
काम दिये सब ने पापों के सिर पर भारी भार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥

जो तू करता है पतितों का अपनाकर उद्धार
तो शंकर मुझ पापी को भी भव-सागर से तार ।
हे प्रभु मेरी ओर निहार ॥

अपनी अधमता

(दोहा)

जोगी मन-मानी कहो कुछ न करो संकोच ।
और न मेरे जोड़ का, पतित पातकी पोच ॥

(गीत)

मुझसा कौन अबोध अधम है ।

समता मिटी सत्व, रज, तम की, गौणिक विकृति विषम है,
सुखद विवेक-प्रकाश कहाँ है, नरक रूप भ्रम-तम है ।
मुझसा कौन अबोध अधम है ॥

मन में विषय-विकार भरे हैं, तन में अकड़ न कम है,
रहा न प्रेम-विलास वचन में, तनक न त्रिक संयम है ।
मुझसा कौन अबोध अधम है ॥

विकट वितण्डावाद निगम है, कपट जटिल आगम है,
मंगलमूल मनोरथ अपना, अनुपकार अनुपम है ।
मुझसा कौन अबोध अधम है ॥

अब कुछ धर्म-भाव उपजा है, यह अवसर उत्तम है,
पर करुणासागर शंकर का, न्याय न निपट नरम है ।
मुझसा कौन अबोध अधम है ॥

हताश की हा ! हा !

(दोहा)

डूबे संसृति-सिंधु में, देह-पोत बहु बार ।
शंकर ! बेड़ा दीन का, अब तो करदे पार ॥

(गीत)

डगमग डोले दीनानाथ !
नैया भव-सागर में मेरी ॥
मैं ने भर-भर जीवन-भार छोड़ तन-बोहित बहुबार,
पहुँचा एक नहीं उस पार, यह भी काल चक्र ने घेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
मुझको मेरुदण्ड-पतवार कर पग-पाटे चले न चार,
सङ्का मन-मांझी छिप हार, पूरी दुर्गति रात अँधेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
उठें भव मग्न, भाव भुजंग झटके-पटके ताप-तरंग
दरती कर्म-पवन के संग, भाग भरती है चक्फेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
ठोकर मरणाचल की खाय फट कर डूब जायगी हाय,
शंकर अबकी पार लगाय तेरी मार सही बहुतेरी।
ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

(दोहा)

भक्ति-भूमिका पै बना मंदिर दृढ़ विश्वास।
राग-रत्न का हो रहा मनहर प्रकाश ॥

अनुराग-रत्न

भद्रोल्लास

(यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति)

तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १।२।७।२० ॥

(ब्रह्मनाद)

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो, निवेशि तस्यात्मनि यत्सुख भवेत् ,
नशक्यते वर्णयितु गिरा तदा, स्वय तदन्त करणेन गृह्यते ॥

सत्य का महत्त्व

(महालक्ष्मी वृत्त)

सत्य ससार का सार है । सत्य का शुद्ध व्यापार है ॥
सत्य सद्धर्म का धाम है । सत्य सर्वज्ञ का नाम है ॥

गुरु-गुण-गान

(कविता छंद)

जिस अखिलेश्वर भवनाथ एक ने, ठाठ अनेक पसारे हैं।
जिस असीम चेतन के वश में जीव चराचर सारे हैं॥
जिस गुण हीन ज्ञान-सागर मे, सब गुण धारी धारे हैं।
उसके परम भक्त शुभ धामी, श्रीगुरुदेव हमारे हैं॥

सद्गुरु-गौरव

(दोहा)

जिसके ज्ञानागार में प्रतिमा करे विलास।
बीज विश्व-विज्ञान का समझो उसके पास॥

(गीत)

जिसमें सत्य सबोध रहेगा
कौन उसे सद्गुरु न कहेगा॥
जो विचार विचरेगा मन में अर्थ बसेगा वही वचन में,
भेद न होगा कर्म कथन में तीन भाँति रस एक बहेगा।
जि० स स र को उ० स न कहेगा॥
सद्गुरु-गम्य-गौरव तोलेगा पोल कपट छल की खोलेगा
जब प्रमाद-प्रद की बोलेगा मार मार मद की न सहेगा॥
जि स स र को उ० स न कहेगा॥
मोह-महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु भाव भरेगा
उन्नति के उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहेगा।
जि स स र को उ स न कहेगा॥

धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग सिद्ध शुभ साज सजेगा,
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख-हुताशन में न दहेगा ॥
जि० स० म० र० कौ० उ० स० न कहेगा ॥

जीवनमुक्तों के नाम

(दोहा)

होने लगता है जहाँ, परम-धर्म का ह्रास ।
योगी करते हैं वहाँ, दूर अधर्मज त्रास ॥

(गीत)

सुनो रे साधो,
मङ्गल मण्डित नाम ॥

अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, प्रकटे पूरण काम,
ब्रह्मा, मनु, वसिष्ठ ने पाया, उच्च विशद विश्राम ।
सु० सा० म० म० नाम ॥

धर्माधार अखण्ड प्रतापी, राम लोकअभिराम,
योगिराज अद्वैत विवेकी, यादवेन्द्र घनश्याम ।
सु० सा० म० म० नाम ॥

विद्या-वारिधि व्यास देव ने, समझे ऋग्यजु साम,
सिद्ध प्रसिद्ध महा विज्ञानी, शुद्ध बुद्ध सुखधाम ।
सु० सा० म० म० नाम ॥

शंकरादि नामी पुरुषों के, गाय-गाय गुण-ग्राम,
करिये दयानन्द स्वामी को श्रद्धा सहित प्रणाम।
सु० स० मं० मं० ग्राम ॥

मोक्ष पर सदुक्ति

(अमिताक्षर वृत्त)

कौन मानेगा नहीं, इस उक्ति को—
गाढ़ निद्रा-सी करें, यदि मुक्ति को।
सोचती है भावना उस जन्म की—
मानता है जो नहीं, इस युक्ति को॥

प्रशस्त पाठ

(दोहा)

माना कारण दुःख के सुख के हेतु अनेक।
साधन है कैवल्य का केवल एक विवेक॥

(भावात्मक सवैया)

(१)

बिन बास बसे वसुधा-भर में अथवा रसहीन चढ़े बन में।
चमके बिन रूप दुराशन में बिचरे बिन मूल प्रमत्तन में॥
गरजे बिन शब्द घनाघन में बिन भेद रहे जड़-चेतन में।
कवि शंकर ब्रह्म विलास करे, इस भाँति विवेक-भरे मन में॥

(२)

शुभ सत्य सनातन धर्म वही, जिस में मत-पन्थ अनेक नहीं ।
बल वर्द्धक वेद वही जिस में, उपदेश अनर्थक एक नहीं ॥
अविकल्प समाधि वही जिसमें, सुख-संकट का व्यतिरेक नहीं ।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिस के मन में अविवेक नहीं ॥

(३)

मिल वैदिक मन्त्र-पयोद घने, सुविचार-महाचल पै बरसें ।
विधि और निषेध प्रवाह बहें, उपदेश-तडाग भरे दरसें ॥
व्रत-साधन-वृक्ष बढ़ें विकसें, लटकें फल चार पकें सरसें ।
कवि शंकर मूढ विवेक बिना, इस रूपक के रस को तरसें ॥

(४)

जड़-चेतन भूत अधीन रहें, गुण साधन दान करें जिसको ।
सब को अपनाय सुधार करें, शुभचिन्तक रोक रहें रिस को ॥
बन जीवनमुक्त सुखी विचरें, तज मौखिक दत्त घिसाघिस को ।
कवि शंकर ब्रह्म विवेक विना, इतने अधिकार मिलें किसको ॥

(५)

गिन खेट भकूट खमण्डल में, फल ज्योतिष के पहचान लिये ।
कर शिल्प रसायन की रचना, रच भौतिक तत्व विधान लिये ॥
समझे गुण दोष चराचर के, नव द्रव्य यथाक्रम मान लिये ।
कवि शंकर ज्ञान विशारद ने, सब के सब लक्षण जान लिये ॥

(६)

परिवार विलास विसार दिये, क्षणभंगुर भोग भरे घर में ।
समता उपजी ममता न रही, अपवित्र अनित्य कलेवर में ॥

अभिमान मरा भ्रम-बोध मिटे, अनुराग रहा न चराचर में ।
कवि शंकर पाय विवेक टिके, इस भाँति महा मुनि शंकर में ॥

(७)

भ्रम-कुम्भ असार असत्य भरे, गिर सत्य-शिला पर फूट गये ।
हठवाद, प्रमाद, न पास रहे, दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये ॥
समझे अब एक सदाशिव को कुविचार, कुवासन छूट गये ।
कवि शंकर सिद्ध, प्रसिद्ध, सुधी, सुख-जीवन का रस लूट गये ॥

(८)

सुरपादप निर्भय न्याय बने अमरयाम घटा बन जाय दया ।
कृषि-भू पर प्रीति-सुधा बरसे, बन प्यार बढ़े करनी ममता ॥
उपकार मनोहर फूल खिलें, सब को हरसे नय रूप लता ।
कवि शंकर पुण्य फले उसका, जिस में गुरु-ज्ञान समान गया ॥

(९)

अब कौन अगाध पयोनिधि के उस पार गया जलयान बिना ।
मिल भाग्य अपार, उपाय रहें, धन में न समान, सम्मान बिना ॥
कहिये प्रभु ध्येय मिला किस को अविकल्प अखण्डित ध्यान बिना ।
कवि शंकर मुक्ति न हाथ लगी भ्रम नाशक निर्मल ज्ञान बिना ॥

(१)

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे, कपटी जन दम्भ गमाय गये ।
रच रोष भयानक आपस में शठ केवल पाप कमाय गये ॥
जन, धाम बिसार परात्म में मनधाम असंख्य समाय गये ।
कवि शंकर सिद्ध मनोरथ की अब शुद्ध सुबोध बनाय गये ॥

(११)

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके ।
धर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके ॥
गुरु-गौरव धार महन्त बने, धन धाम कुटुम्ब विसार चुके ।
कवि शंकर ज्ञान बिना न तरे, सब ओर फिरे झख मार चुके ॥

(१२)

निगमागम, तन्त्र, पुराण पढे, प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे ।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, बन वञ्चक वेश अनेक धरे ॥
विचरे कर पान प्रमाद-सुरा, अभिमान-हलाहल खाय मरे ।
कवि शंकर मोह-महोदधि को, वकराज विवेक बिना न तरे ॥

(१३)

गुरु-गौरव हीन कुचाल चलें, मत भेद पसार प्रपञ्च रचें ।
दिन-रात मनोमुख मूढ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचें ॥
व्रत-बन्धन के मिस पाप करें, हठ छोड न हाय लबार लचें ।
कवि शंकर मोह-महासुर से, विरले जन पाय विवेक बचें ॥

(१४)

घर बार विसार विरक्त बने, मुनि वेश बनाय प्रमत्त रहें ।
बकवाद अबोध गृहस्थ सुनें, शठ शिष्य अनन्य सुजान कहें ॥
घुस घोर घमण्ड महा वन में, विचरें कुलबोर कुपन्थ गहें ।
कवि शंकर एक विवेक विना, कपटी उपताप अनेक सहें ॥

(१५)

तन सुन्दर रोग विहीन रहे, मन त्याग उमङ्ग उदास न हो ।
मुख धर्म प्रसन्न प्रकाश करे, नर-मण्डल में उपहास न हो ॥

मन की महिमा भरपूर मिले प्रतिकूल मनोज-विलास न हो ।
कवि शंकर पै उपभोग वृथा, पटुता प्रतिभा यदि पास न हो ॥

(१६)

दिन-रात समोद विलास करें, रस-राज भरे सुख-साज बने ।
शिर धार किरीट कृपाण गहें, अवनी-भर के अभिराज बने ॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहे, अविरुद्ध अनेक समाज बने ।
कवि शंकर वैभव ज्ञान बिना भवसागर के न जहाज बने ॥

(१७)

जिस पै करतूत चली न किसी नर, किन्नर, नाग सुरासुर की ।
जब साहस के बल से न मिटी, हठ भीरु मनोज भयातुर की ॥
गति उत्तम के मग में न रुकी अति उग्र उमङ्ग भरे उरकी ।
कवि शंकर पै बिन ज्ञान उसे प्रभुता न मिली प्रभु के पुरकी ॥

(१८)

अनमेल अनीति प्रचार करें, अपवित्र प्रथा पर प्यार करें ।
अज-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज-सुधार करें ॥
अपकार अनेक पुकार करें, व्यभिचार सुकर्म विसार करें ।
कवि शंकर नीच विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें ॥

(१९)

कुलबोर कठोर महा कपटी जन कामज-कर्म-कलाप करें ।
मद लोभ प्रचण्ड प्रमाद भरे भर-पेट भयानक पाप करें ॥
मय रोष करें बहु आपस में नित वैर न मेल-मिलाप करें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना अपना गल-बन्धन आप करें ॥

(२०)

बिन पावक देव न पा सकते, अभिमन्त्रित आहुतियाँ हवि की।
रसराज न सुन्दर साज सजे, छिटके मिल जो न छटा छवि की॥
ग्रह ऋक्ष गिरें नगमण्डल में, यदि प्यार करे न प्रभा रवि की।
कवि शकर तो बिन ज्ञान किमे, पदवी मिलजाय महाकवि की॥

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

(दोहा)

रहे जन्म से मृत्यु लो, ब्रह्मचर्य व्रत धार।
समझो तिमे वीर को, पौरुष पुरुणाकार॥१॥
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार।
शकर होता है वहाँ, सबका सर्व-सुधार॥२॥
बाल ब्रह्मचारी रहे, पाय प्रताप-अखण्ड।
पाठक आगे देखलो, पाँच प्रमाण प्रचण्ड॥३॥

प्रशस्त पञ्चक

(त्रिविरामात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

पुरुषोत्तम परशुराम

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा।
पैना कुठार, रक्त वसा, चाटता रहा॥

भागे अनंग, मोह मिटा धीर न कोई।
मारे महीप, भूप भगा धीर न कोई॥
सुप्रसिद्ध राम जामदग्न्य, का बखान* है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य की महान है॥

(२)

महावीर हनुमान

सुग्रीव का था, मित्र बने काम का रहा।
प्यारा अनन्य भक्त सदा राम का रहा॥
सारा असाध्य काज भक्तों को सुलभ किया।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट किया भी सुलभ किया॥
हनुमान जती वीर वरों में प्रधान है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य की महान है॥

(३)

राजर्षि भीष्मपितामह

भूला न किसी भाँति कभी टेक ठिकाना।
माना मनोज का न कभी, ठीक ठिकाना॥
जीते असंख्य शत्रु रहा दर्प दिखाता।
शय्या शरों की पाय मरा, धर्म सिखाता॥
अब एक भी न भीष्म जती, सा सुजान है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य की महान है॥

---

* बखान = भूमिदान, गोदान अश्वदान।

(४)

महात्मा शंकराचार्य

ससार सार, हीन सङ्ग, सा उडा दिया ।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुडा दिया ॥
अद्वैत एक, ब्रह्म सबों, को बता दिया ।
कैवल्य-रूप, सिद्धि-सुधा, का पता दिया ॥
भ्रम-भेद भरा, शकरेश, का न ज्ञान है ।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

(५)

स्वामी दयानन्द सरस्वती

विज्ञान पाठ, वेद पदों, को पढा गया ।
विद्या-विलास, विज्ञ वरों, का बढा गया ॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया ।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया ॥
अब कौन दया, नन्द यती, के समान है ।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

महर्षि दयानन्द का उपकार

(राजगीत)

आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया ।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया ॥

शाखा सुधार वारि बड़ी बल मेल की।
देखो समाज फूल फलीसे खिला गया॥
काटे कराल त्रास अविद्या अधम के।
विद्या-वधू को धर्म्म-धनी से मिला गया॥
ऊँचे चढ़े क्रूर कुचाली गिरा दिये।
पक्षाधिकार बद पक्षों को दिला गया॥
खोली कहीं न पोल हके ढोंग ढोल की।
संसार के दुर्मत मतों को हिला गया।
'शंकर' दिया सुभाग्य विचारी को दृढ़ का।
कैवल्य के विशाल भवन में बिठा गया॥

सद्गुरु-प्रसाद

(दोहा)

मिल वेद-वक्ता मिले श्री गुरु दया दयालु।
महानन्दी बन गये सेवक सब श्रद्धालु॥

(गीत)

श्री गुरु दयानन्द से दान,
हमने महानन्द लिया है॥
देकर वेदों का उपदेश, देखा परम धर्म का वेश,
खाना मंगलमूल महेश ज्ञानागार पवित्र किया है।
श्री० द या द न लिया है॥

पाये युक्ति-प्रमाण प्रचण्ड, जिन से जीत लिया पाखण्ड ,
मारा देकर दण्ड घमण्ड, हठ का भण्डा फोड दिया है ।
श्री० द० दा० हृ० त्र० लिया है ॥

भ्रम की तारतम्यता तोड, उलझे जाल मतों के छोड ,
उलटे पन्थों से मुख मोड, प्रतिभा का पीयूष पिया है ।
श्री० द० दा० हृ० त्र० लिया है ॥

मुनि की शिक्षा का बल धार, पूजा प्रेम विरोध विसार ,
शकर कर दे बेडा पार, जीवनदाता योग जिया है ।
श्री० द० दा० हृ० त्र० लिया है ॥

सद्गुरु-घोषणा

(षट्पदी छन्द)

ब्रह्म विचार प्रचार, ध्यान शकर का धरना ।
जाल, प्रपच, पसार, न पूजा जड की करना ॥
भूत, प्रेत, अवतार, और तज श्राद्ध मरों के ।
धर्म सुयश, विस्तार, गहो गुण विज्ञवरों के ॥
भ्रम, भूलों की संशोधना, शुभ सामयिक सुधार है ।
यह वेदों की उद्बोधना, सुन गुरु गौरव सार है ॥

सद्गुरु का सान्निध्य

(दोह)

सीखे श्रीगुरुदेव से, ज्ञान-कथा अति गुह्य।
तो भी महिमा ब्रह्म की हाय! न समझे मूढ़ ॥

(गीत)

श्रीगुरु गुह ज्ञान के ज्ञानी ॥
देख सर्व संघात ब्रह्म की अटल एकता जानी,
भेदों से भरपूर अविद्या मूल-भरी पहचानी।
श्रीगुरु गुह ज्ञान के ज्ञानी ॥
एक वस्तु में तीन गुणों की, मायिक महिमा मानी
ठोस पोल की तारतम्यता मूल प्रकृति ने ठानी।
श्रीगुरु गुह ज्ञान के ज्ञानी ॥
देश दिया आकाश, काल भू मारुत, पावक, पानी
इन के साथ जीव की बानी ज्योति मनोरस खानी।
श्रीगुरु गुह ज्ञान के ज्ञानी ॥
खोखासा उपदेश दिया है, बढ़िया बात बखानी
तो भी मूढ़ नहीं समझेंगी शङ्कर कूढ़ कहानी।
श्रीगुरु गुह ज्ञान के ज्ञानी ॥

(दोहा)

विज्ञानी गुरु देव ने दूर किया भ्रम-राग
आज अविद्या-बन्ध से मुक्त हुए हम जाग ॥

वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा

(रूपघनाक्षरी कवित्त)

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी वक्र गामियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पण्डितों के,
मानी मूढ मण्डल के साथी न रहेंगे हम॥
पावे शुद्ध सम्पदा तो भोगें सुख-भोग सदा,
आपदा पड़े तो सारे संकट सहेंगे हम।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति भावना से,
दीनानाथ शकर सँगाती से कहेंगे हम॥

भारतोदय

(दोहा)

देगी शकर की दया, अब आनन्द अपार।
देखो! भारत का हुआ, उदय दूसरी बार॥

(गीतिकात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

ब्रह्मचारी ब्रह्म विद्या, का विशद विश्राम था।
धर्मधारी धीर योगी, सर्व सद्गुण-धाम था॥
कर्मवीरों में प्रतापी, पर निरा निष्काम था।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध जिस का नाम था॥

बीज विद्या के उसी का, पुण्य-पौरुष बोगया।
देख लो जागो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(२)

सत्यवादी वीर था जो, धार्मिक संग्राम का।
साहसी पाया किसी को भी न जिस के काम का॥
प्राण दे प्रेमी बना जो प्रेम के परिणाम का।
क्या दया आनन्द धारी धीर था यह नाम का॥
धन्य सच्चिदा-सुधा से धर्म का मुख धोगया।
देख लो जागो दुबारा भारतोदय होगया॥

(३)

साधु-भक्तों में सुयोगी संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे॥
वेदमन्त्रों को विवेकी प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचकों की छातियों में, शूल-से गड़ने लगे॥
भारती जागी अविद्या का कुलाहल सोगया।
देख लो जागो दुबारा भारतोदय होगया॥

(४)

कामना विज्ञान वादी, मुक्ति की करने लगे।
ध्यान द्वारा आत्मा में ध्येय को धरने लगे॥
आलसी, पापी, प्रमादी पाप से डरने लगे।
धन्य विश्वासी सचाई भूख में मरने लगे॥

धूलि मिथ्या की उड़ादी, दम्भ दाहक रोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(५)

तर्क—झञ्झा के झकोले, झाड़ते चलने लगे।
युक्तियों की आग चेती, जालिया जलने लगे॥
पुण्य के पौधे फबीले, फूलने फलने लगे।
हाथ हत्यारे हठीले, मादकी मलने लगे॥
खेल देखे चेतना के, जड़ खिलौना खोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(६)

तामसी थोथे मतों की, मोह-माया हट गई।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई॥
छूतछैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई।
लालची, पाखण्डियों की, पेट-पूजा घट गई॥
ऊत-भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(७)

राजसत्ता की महत्ता, धन्य मङ्गलमूल है।
दण्ड भी काँटा नहीं है, न्याय-तरु का फूल है॥
भावना प्यारी प्रजा की, धर्म के अनुकूल है।
जो बना वैरी, विरोधी, हाय उसकी भूल है॥

क्या किया जो दुष्टता का, भार आकर होगया।
देख लो लोगो तुम्हारा भारतोदय होगया॥

(८)

सत्य के साथी विवेकी मृत्यु को तर जायँगे।
ज्ञान-गीता गाय मोक्षों का मज़ा कर जायँगे॥
अन्ध-अज्ञानी अँधेरे में पड़े मर जायँगे।
आप डूबेंगे अविद्या देश में भर जायँगे॥
शंकरानन्दी वही है ज्ञान शिवको जो गया।
देखलो लोगो तुम्हारा भारतोदय होगया॥

धर्मोपमाष्टक

(दोहा)

भूल न दीनानाथ को कर्म, विचार सुधार।
यों हो सकता है सदा भव-सागर से पार॥

(जंगली छन्द)

काम क्रोध मद, लोभ मोह की पँचरंगी कर दूर।
एक रंग रख मन बाढ़ी में, भर ले तू भरपूर॥
प्रेम पसार न भूल भलाई वैर, विरोध बिसार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म क्षमा कर धार॥ १॥

देख कुदृष्टि न पड़ने पावे, पर ललिता की ओर।
बिगड़ा किसी को नहीं सुनाना कोई वचन कठोर॥

अबला, अबलों को न सताना, पाय बड़ा अधिकार।
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को, धर्म दया उर धार॥२॥

आय न उलझे मत वालों के, छल, पाखण्ड, प्रमाद।
नेक न जीवन-काल बिताना, कर कोरे बकवाद॥
बांटें मुक्ति ज्ञान बिन उनको, जान अजान लबार।
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को, धर्म दया उर धार॥३॥

हिंसक, मद्यप, आमिष-भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर।
जुवारी, पिशुन, चबोर, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर॥
असुर, आततायी, नृप-द्रोही, इन सब को धिक्कार।
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को, धर्म दया उर धार॥४॥

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं, निर्भय देश-विदेश।
तर्क सिद्ध श्रेयस्कर जिन से, मिलते हैं उपदेश॥
ऐसे अतिथि महापुरुषों का, कर सादर सत्कार।
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को, धर्म दया उर धार॥५॥

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सबका सम्मान।
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को, दे जल, भोजन दान॥
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को, पूज सुयश विस्तार।
भक्ति-भाव से भज शङ्कर को, धर्म दया उर धार॥६॥

लगन लगाय धर्मपत्नी मे, कुल की बेलि बढाय।
कर सुधार दुहिता, पुत्रों का, वैदिक पाठ पढाय॥

सज्जन, साधु, सुहृद, मित्रों में, बैठ विचार प्रचार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार ॥७॥

पाल कुटुम्ब सदुद्यम द्वारा भोग सदा सुख भोग।
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से, निश्रेयस प्रद योग ॥
जप, तप, यज्ञ, दान, देवेंगे जीवन के फल चार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को धर्म दया उर धार ॥८॥

प्रबोध पञ्चक

(दोहा)

जागेगा जगदीश को जो जन छोड़ कुकर्म।
क्यों न सुधारेगा उसे सत्य सनातन धर्म ॥

(प्रमाणिकाच्छन्द मिश्रितगान)

सुधार धर्म कर्म को। बिसार दो अधर्म को ॥
बढ़ाय बेलि प्रीति की। कथा सुनीति रीति की ॥
सुखी करो अनेक से।
मिलो महेश एक से ॥१॥

बनाव ब्रह्मचर्य को। मनाव विप्रवर्य को ॥
पढ़ाव वेद को पढ़ो। सुबोध शैल पै चढ़ो ॥
सुधी बनो विवेक से।
मिलो महेश एक से ॥२॥

रिझाय धर्मराज को। भजो भले समाज को।
मिटाय जाति-पाँति के। विरोध भाँति भाँति के॥
छुड़ाय छेक छेक से।
मिलो महेश एक से॥२॥

जगाय ब्रह्म-योग को। भगाय कर्म भोग को॥
बसाय ज्ञेय ज्ञान में। थमाय ध्येय ध्यान में॥
समाधि सीख भेक से।
मिलो महेश एक से॥३॥

जनाय जाल-जल्पना। करो न कूट कल्पना॥
विचार शंकरादि के। रहस्य हैं ऋगादि के॥
उन्हें टिकाय टेक से।
मिलो महेश एक से॥५॥

सावधान रहो

(दोहा)

जाना जिसने आपको, भ्रम के भेद बिसार।
मित्र उसी तल्लीन का, है शंकर करतार॥

(भुजंग्यात्मक राजगीत)

महादेव को भूल जाना नहीं,
किसी और से लौ लगाना नहीं॥

बना ब्रह्मचारी पक्का बर का,
छिद्राभास कोरे बढ़ाना नहीं ॥
करो प्यार पूरा सदाचार पै,
दुराचार से जी लगाना नहीं ॥
निरालस्य विद्या बढ़ाते रहो,
अविद्या-नटी को नचाना नहीं ॥
रहो खोलते पोल पाखण्ड की
शठों की प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं ॥
बड़ाई करो ज्ञान-विज्ञान की
महामोह की मार खाना नहीं ॥
अहिंसा न छोड़ो दया-दान दो
किसी जीव को भी सताना नहीं ॥
सुना के रसीली कथा काम की
भली भावकी को रिझाना नहीं।
बिना याचना और की वस्तु को
ठगी से न लेना चुराना नहीं ॥
छुआछूत से जाति के मेल को
घृणा के गढ़े में गिराना नहीं ॥
न भूला कभी जाति-विद्रोह की
प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं ॥
महाशोक सन्ताप के सिन्धु में
गिरा नारियों को डुबाना नहीं ॥

चलाना सदुद्योग से जीविका,
दिखा लोभ-लीला कमाना नहीं ॥
न चूको मिलो शङ्करानन्द से,
निरे तर्क के गीत गाना नहीं ॥

सदुपदेश

(दोहा)

मत पन्थों में जाल के, देख चुका सब देश।
भोले अब तो मानले, शङ्कर का उपदेश॥

(रुचिरात्मक राजगीत)

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का, भक्ति भाव से ध्यान करो,
कर्मयोग साधन के द्वारा सिद्ध ज्ञान-विज्ञान करो।
वेद-विरोधी पन्थ बिसारो, मन्द मतों से दूर रहो,
करते रहो सत्य की सेवा, गुरु लोगों का मान करो।
शुभ सुदृश्य देखो विद्या के, धूलि अविद्या पर डालो,
अपने गुण, आविष्कारों का, सब देशों को दान करो।
चारों ओर सुयश विस्तारो, पुण्य-प्रतिष्ठा को पकड़ो,
जाति-भक्ति के साथ प्रजा की, पूजा का अभिमान करो।
छोडो उन कामों को जिनसे, औरों का उपकार न हो,
वैर त्याग, पीयूष प्रेम का, सभ्य-सभा में पान करो।

प्राण हरो आलस्यासुर के, रक्षा करो सद्गुण की
सेवक बनो धर्मवीरों के, दुष्टों का अपमान करो।
हे मित्रो दुर्लभ जीवन पै कोई दोष न लगने दो
अपनाओ शंकर स्वामी को, बैठे मंगल-गान करो।

हितवार्त्ता

(दोहा)

जीव अविद्या-व्याधि को कर देगा जब दूर।
शंकर दाता की कृपा तब होगी भरपूर॥

(गीत)

अब चलो भाई
चतना न त्यागो जागो सो चुके॥
समता सटकी पटुता पटकी, भटकी कटुता खल-दल की,
भूख भरी बढ़वा अपनाकी, विद्या के सहारे प्यारे हो चुके।
अ चे मा चे त्या जा सो चुके॥
अपनी गुरुता लघुता करकी परकी प्रभुता पर घर की
कायर कर्म-कलाप तुम्हारे, वीरों की हँसी के मारे रो चुके।
अ चे मा० चे त्या जा सो चुके॥
बिगड़ी सुविधा सुख-साधन की उलटी गति अस्थिर मन की
सौंप चरित्र सद्गुण तूने लोगों में कमाना-खाना खो चुके।
अ चे मा चे० त्या० जा० सो चुके॥

उतरी पगड़ी बढ़ियापन की, घुड़कें अगुआ अवनति के,
सेवक शंकर के न कहाये, पन्थों में मतो के बाँटे बो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

कर भला, होगा भला

(दोहा)

शैशव खोया खेल में, यौवन काल समेत ।
थोड़ा जीवन शेष है, अबतो चेत अचेत ॥

(गीत)

अब तो चेत भला कर भाई ॥
बालकपन में रहा खिलाड़ो, निकल गई तरुणाई,
बहुत बुढापे के दिन बीते, उपजी पर न भलाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
धर्म, प्रेम, विद्या, बल, धन की, करी न प्रचुर कमाई,
इनके विना बटोर न पाई, सुयश बगार बड़ाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
पिछले कर्म विगाड चुका है, अगली विधि न बनाई,
चलने की सुधि भूल रहा है, सुमति समीप न आई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
सकट काट नहीं सकती है, कपट भरी चतुराई,
ब्रह्मज्ञान बिन हाय किसी ने, शंकर सुगति न पाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥

नरक-निदर्शन

(दोहा)

जन्म एक प्रकार से, भोग-विलास समान ।
मरना भी है एक-सा समझें भेद अजान ॥१॥
एक पिता के पुत्र हैं धर्म सनातन एक ।
हा, मत वालों ने रचे जाल-कुपन्थ अनेक ॥२॥

(गीत)

हम सब एक पिता के पूत ॥
हा, विशाल मानव-मण्डल में उपजे अद्भुत भूत,
नाम लिये हम मतवालों ने भिन्न-भिन्न मत-सूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
सामाजिक बल को खा बैठी, छुआ की छूत-अछूत,
बस कर जाति-पाँति ने तोड़ा सुख-साफल्य का सूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
अगुआ पाप बढ़ाते रहे हैं, सबल चक्र के दूत
पिण्ड पड़ी कुविद्या कुनीति की रोष भरी करतूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
भड़क रही तीनों नरकों में भय की आग अकूत,
शंकर कौन बुझावे इसको बिन विवेक जीमूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥

प्रेम पञ्चक

(दोहा)

यद्यपि दोनों मे रहे, जड़ता मूलक मोह ।
तोभी प्रभुता प्रेम की, प्रकटें चुम्बक लोह ॥१॥
यों निर्जीव सजीव का, समझो प्रेम प्रसङ्ग ।
प्यारे दीपक से मिले, प्राण विसार पतङ्ग ॥२॥
तरु, वल्ली, फूलें, फले, आपस मे लिपटाय ।
माने महिमा मेल की, बढें प्रेम-बल पाय ॥३॥
घेर रहे ससार को, प्रेम, वैर, भरपूर ।
पहले की पूजा करो, पिछले को कर दूर ॥४॥
बैठ प्रेम की गोद में, हिलमिल खेलो खेल ।
प्रेम बिना होगा नहीं, प्रभु शकर से मेल ॥५॥

सच्ची बात

(सुमनात्मक राजगीत)

मेल का मेला लगा है, मार खाने को नहीं,
धर्म रचा को टिके हो, जी दुखाने को नहीं ।
जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को,
प्रेम की पूजा, भलाई, भूल जाने को नहीं ।

द्रव्य दाता न दिया है, दान, भोगों के लिए,
गाड़ने को दीन-हीनों के मकान का नहीं।
वीरता धारी प्रमादी, मोह के संहार को,
जाति-विद्रोही रहो में, मान पान का नहीं।
जो लगी है मन से वा चाह वो संसार का
ढोंग भक्तों के चलाओ में दिखाने को नहीं।
शंकरानन्दी बनो तो वेद विद्या को पढ़ो,
परिहवाई के कलीले गीत गान का नहीं॥

आत्म-शोधन

(दोहा)

जो कुछ भूलो से हुआ, उस का सोच बिसार।
नाता तोड़ बिगाड़ से चेत, चरित्र सुधार॥

(गीत)

बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥
खेल न खेल मूढ़-मण्डल में कर विवेक पर प्यार,
छल-बल छोड़ मोह-माया के हित कर सत्य पधार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥
बन्धन काट कभी विषयों के, वश कर मन को मार
अस्थिर भोग भोग मत भूले, सब को समझ असार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥

छाक न छल से छीन पराई, बाँट सुकृत-उपहार,
मत सोचे अपकार किसी का, करले परउपकार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार ॥

पल भर भी भूले मत भाई, हरि को भज हर बार,
चेत चार फल देगा तुझ को, शंकर परम उदार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार ॥

निषिद्ध जीवन

(दोहा)

मिलता है जो मित्र से, तो कुचरित्र सुधार।
प्रेमामृत पीले सखा, जाति-विरोध बिसार ॥

(षट्पदी छन्द)

बालक, दीन, अनाथ, हाय! अपनाय न पाले।
दलित देश के साथ, प्रेम कर कष्ट न टाले ॥
संकट किया न दूर, अभागे विधवा-दल से।
मान दान भरपूर, न पाया मुनि मण्डल से ॥
गरिमा न गही गोपाल की, ज्ञान न गुणियों से लिया।
शठ शंकर, लोभी लालची, पाय प्रचुर पूँजी जिया ॥

कुमार्ग-गामी

(दोहा)

खोटे कर्मकलाप से, प्रकटे मन का मैल ।
मत्त प्रमादी बैल ने, पकड़ी उलटी गैल ॥

(मालती सवैया)

जाल प्रपञ्च पसार घने, कुल-गौरव का दर फाड रहा है।
मानव मण्डल में मिल दाहक, दानव दुष्ट दहाड़ रहा है॥
जाति समुन्नति की जड को कर, घोर कुकर्म उखाड रहा है।
भूल गया प्रभु शकर को जड़, जीवन-जन्म बिगाड रहा है॥

सुधार की शिक्षा

(दोहा)

हाय अभागे खो चुका, विद्या, बल, धन, धाम ।
दाता से भिक्षुक बना, उलट राम का नाम ॥

(किरीट सवैया)

सभ्य-समागम के प्रतिकूल न, मूढ भयानक चाल चलाकर।
वञ्चक बान बिसार बुरी रच, दम्भ किसी कुल को न छलाकर॥
देख विभूति महाजन की पड, शोक हुताशन में न जला कर।
शकर को भजरे भ्रम को तज, रे भव का भरपूर भला कर॥

यह मेरा है, वह तेरा है, ममता, परता ने घेरा है,
झंझट, झगडों के झूले पै, झकझोटों से झूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

भोग-विलास रसीले पाये, दारा, पुत्र मिले मन भाये,
मानो मृग-तृष्णा के जल में, व्योम-पुष्प-सा फूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

शंकर अन्त-काल आवेगा, कुछ भी साथ न लेजावेगा,
झूँठी उन्नति के अभिमानी, क्यों कुसंग में ऊल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

चेतावनी

(राजगीत)

जब तलक तू हाथ मे मन का न मनका जायगा।
तब तलक इस काठ की माला मे क्या फल पायगा॥
भूल कर अज को अजा का आजलों चेरा रहा।
क्या इसी पाखण्ड से परमात्मा मिल जायगा॥
धर्म्म का धन छोड कर पूँजी बटोरी पाप की।
बस इसी करतूत से धर्म्मात्मा कहलायगा॥
चाह की चिनगी से चेंका चैन फिर चित को कहाँ।
देख धरकर आग पै पारा न ठिक ठहरायगा॥

नाम दीनों को न देकर नाम का दानी बना।
मान के भूखे यहाँ आकर पता क्या खायगा॥
काम-लीला के लिये रच रंगशाला राग की।
बोल चतुरंगी रँगीले गीत कबतक गायगा॥
स्वार्थी उपकार औरों का कभी करता नहीं।
फिर तुझे संसार सारा किस लिए अपनायगा॥
जो तुझे भाती नहीं सबकी भलाई तो भला।
क्यों न भोले भाइयों को भूल में भरमायगा॥
प्रेम का जल दे रहा परिवार के आराम को।
फल नहीं देगा किसी दिन फूल कर मुरझायगा॥
खेल में खोया लड़कपन भोग में जोबन गया।
भूल में भागी जरा क्या और जीवन आयगा॥
दूर प्यारे की पुरी है दिन किनारे आचुका।
चल नहीं तो इस झमेले मे पड़ा पछतायगा॥
कंठ की घर घर सुनेंगे अन्त का घर के सगे।
बस यही 'शंकर' घिरा घर घेर में घबरायगा॥

उपालम्भ

(दोहा)

प्रभुता का प्रेमी बना प्रभु से किया न मेल।
रे धर्मध्वज पाप के खूब खुला खोटा खेल॥

(गीत)

दुर्लभ नर-तन पाय के,
कुछ कर न सका रे॥

घोर कुकर्म महा पापों से, पल भर भी पछताय के,
ठग डर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

हा! प्यारे मानव-मण्डल में सुकृत-सुधा बरसाय के,
यश भर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

वैदिक देवों के चरणों पै, सेवक सरल कहाय के,
सिर धर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

दीनबन्धु शकर स्वामी से, मन की लगन लगाय के,
भव तर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥ १॥

(दोहा)

शकर से न्यारा रहा, धर्म, सुकर्म विसार।
कौन उतारेगा तुझे, भव-सागर से पार॥

मनोमुख मूर्ख

(घनाक्षरी)

सारे धर्म-कर्म छोड़े, गोड़े श्याम के तोड़े ।
मारें ग्राम के गपोड़े गीत गौरव के गाते हैं ॥
प्यारी वाणी फटकारी वाचा चोंद-चोंद मारी ।
धारी सभ्यता बिसारी, सींग सत्य को दिखाते हैं ॥
मुड़-मण्डली में डूबे, स्वामी शंकर को भूले ।
फिरें खेलने से फूले भारा को न देख पाते हैं ॥
ऊँची जाति को कजाते नीचता की मार खाते ।
पूरे पातकी कहाते आली जीवन बिताते हैं ॥

हठ से बिगाड़

(दोहा)

कर्म सुधारेगा नहीं कुटिल कुकर्मारूढ़ ।
कोरा हठ-वादी बना मन्द-मनोमुख-मूढ़ ॥

(गीत)

जिस का हठ से हुआ बिगाड़
उस को कौन सुधार सकेगा ॥
हठ को तजे न हट का दास पटके न्याय न फटके पास ,
सच का करे सदा उपहास पैठ भाड़ न बिसार सकेगा ।
जि० ह० हु० बि० उ० को० सु० सकेगा ॥

वंचक चतुरों से वद होड़, अटके टाँग अकड की तोड,
उजवक वात कहे वेजोड, हेकड नेक न हार सकेगा।
जि० इ० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा॥

मन का मित्र प्रमाद प्रचण्ड, तन का पोपक प्रिय पाखण्ड,
धन से उपजा घोर घमण्ड, दुर्मति क्यों न प्रचार सकेगा।
जि० इ० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा॥

अपनी जड़ता को जड जार, समझे प्रतिभा का अवतार,
शठ के सिर से भ्रम का भार, शकर भी न उतार सकेगा।
जि० इ० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा॥

हेत्वाभास का उपहास

(दोहा)

मिथ्या से मिलता नहीं, वैदिक मत का मर्म।
पूरा शत्रु असत्य का, सत्य सनातनधर्म॥

(गीत)

साधन धर्म का रे,
कर्माभास न हो सकता है॥

पैर पसार प्रसुप्तों के से, कपटी सो सकता है,
निद्राहीन वोध विपयों का, कभी न खो सकता है।
सा० ध० क० न हो सकता है॥

पद-पद बोध सद्गम्यों का पढ़ना हो सकता है
बिन विज्ञान पराविद्या का बीज न बो सकता है।
सा न क न हो सकता है॥

मन बहलाने को ठाकुर का ठग भी रो सकता है,
क्या शंकर के प्रेमामृत में अंशु भिगो सकता है।
सा न० क न हो सकता है॥

बनावट से बचो

(दोहा)

छूट रहा संसार का रच-रच कोरे ढोंग।
क्या न बिसारेगा कभी तू अपने हरभोंग॥

(चरणी छन्द)

ढोंग बनावट से न किसी का काम चलेगा।
कृत्रिम नीरस वृक्ष न कोई फूल फलेगा॥
बना न बाहन-राज कभी लड़की का हाथी।
सार विहीन असम्य सत्य का सुना न साथी॥
कुछ मिथ्या से होता नहीं, थोथा चपार निहार लो।
सुख चाहो तो सद्भाव से शंकर को उर धार लो॥

बुढ़ापे की भगतई

(दोहा)

औरों को ठगता रहा, बैठा अब अनुपाय।
माला सटकाता फिरे, भोंदू भगत कहाय॥

(दादरा)

ठग बन गया,
ठग बन गया, भगत बुढ़ापे में॥
छोड़ा डकैतों की फेंटी में जाना, झाके न चीरों के टापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में॥
बैठा ठिकाने पै देवों को पूजे, पूजी लगादी पुजापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में॥
बीती जवानी की मैली पिछौरी, धोने को आया है आपे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में॥
खो जायगा शकरादर्श तेरा, जोपै छपेगा न छापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में॥

संशयसंपन्न

(दोहा)

कोरे तर्क-वितर्क में, उलझे वाद-विवाद।
अस्थिर जी पाता नहीं, शंकर सत्य-प्रसाद॥

(मालती सवैया)

दीन प्रमादि अनन्त मिला कर मूढ़मनु साम अमर्ष बखाने।
नित्य स्वभाव रचे सब का करतार निरीश्वर-वाद न माने॥
शंकर का मत मान बना जगदद्भुत को भ्रम का फल जाने।
सत्य कथा समझे किसकी अगुआ अपनी अपनी हठ ठाने॥

तार्किक का परोक्ष पञ्चक

(दोहा)

है कब से संसार का, कब तक होगा नाश।
क्या देगा इस प्रश्न का उत्तर युक्ति-प्रकाश॥१॥
जन्म लिया जीता रहा जोड़ शुभाशुभ कर्म।
छोड़ गया जो देह को उसका मिला न मर्म॥२॥
कौन विराजे स्वर्ग में नरक निवासी कौन।
मुक्त जीव पाया किसे, सबका उत्तर मौन॥३॥
तर्क-प्रमाणों से परे, पितरों का परलोक।
सुनते हैं देखा नहीं मान लिया रुचि रोक॥४॥
लोगों पे सुलझे नहीं जिन विषयों के भेद।
साधे शब्द प्रमाण से उन को, उन के वेद॥५॥

दंभ-दशक

(दोहा)

जिन में देखोगे नहीं, पौरुष, धर्म, विवेक ।
ठगते हैं वे देश को, रच पाखण्ड अनेक ॥१॥

विश्व-नाथ, माता, पिता, सद्गुरु, साधु-समाज ।
पाँचों से पहले पुजें, मूढ़-मनोमुख-राज ॥२॥

घेर रहे ससार को, पोच प्रपञ्च पमार ।
दम्भासुर के सूरमा, विचरें लण्ठ, लबार ॥३॥

छुआछूत छौंकें छटे, छलिया गाल बजाय ।
चाल न चूकें ढोंग की, नीच निरंकुश हाय ॥४॥

कल्पित ग्रन्थों को कहें, सत्य सनातन वेद ।
अन्ध जालिया जाति में, भरते हैं मतभेद ॥५॥

मान सच्चिदानन्द के, दूत, पूत, अवतार ।
भूले महिमा ब्रह्म की, अबुध, अविद्याधार ॥६॥

पोच पुजारी पेट के, पुण्य कलुप को मान ।
देते हैं करतार को, पशुओं के बलिदान ॥७॥

दाता को परलोक में, मिलते हैं सुख-भोग ।
ऐसे वचनों से बने, दान-वीर लघु लोग ॥८॥

फैल रहे ससार में, जटिल मतों के जाल ।
अज्ञानी उलझे पड़े, अटका बन्ध-विशाल ॥९॥

धोखा है भ्रम जाल है कोरा कपट-प्रयोग।
बचते हैं पाखण्ड से साधु-सरल उपयोग ॥१॥

मतवादीबकवा

(दोहा)

बांके बकवादी वृथा, करते हैं बकवाद।
हाय सुधारेगा किसे इनका कोरी नाद॥

(गीत)

वैर विरोध बढ़ाने वाले
बांके बकवादी बकते हैं॥

चारों ओर दहाड़ रहे हैं, पेट प्रेम का फाड़ रहे हैं
थोथी बातें कहते रहते बकबक नेक नहीं थकते हैं।
वै वि ब० वा बां ब बकते हैं॥

गर्व-गपोड़ सिखाते हैं दर्प दम्भ का दिखलाते हैं
कपटी पोल खोल चोरोंकी अपने पापों को ढकते हैं।
वै० वि ब वा बां ब० बकते हैं॥

मूढ़ मंत्र देते फिरते हैं, अन्धवाद बोते फिरते हैं
हो! हो! हाय दरिद्र देशको कैसा दीन-हीन तकते हैं।
वै वि ब वा बां ब० बकते हैं॥

धींग धमोड़ी हाँक रहे हैं धूलि धर्म की फाँक रहे हैं,
शंकर काम सूझतों के-से, ये अन्धे क्या कर सकते हैं।
वै० त्रि० य० बा० ग्रां० ध० करते हैं॥

धर्म-शत्रु

(दोहा)

बैठे सभ्य समाज में, सुन डाले उपदेश।
जड़ ज्यों के त्यों ही रहे, सुधरे कर्म न लेश॥

(गीत)

जड़ ज्यों के त्यों मतिमन्द हैं,
उपदेश घने सुन डाले॥

आप न छोड़ें पाप प्रमादी, औरों को बरजें बकवादी,
रसना बनी धर्म की दादी, कटुमुख मूसलचन्द हैं,
शुभ कर्म कुचलने वाले।
उपदेश घने सुन डाले॥

सरल सभ्यता से रीते हैं, भोग भ्रष्ट जीवन जीते हैं,
आमिष खाय, सुरा पीते हैं, कपट-कञ्ज-मकरन्द हैं,
रसिया-मिलिन्द-मन काले।
उपदेश घने सुन डाले॥

सीधा सुपन्थ, भूल गया, भेड़-चालिया ।
लादे चटोर, पाप घने, भार ढो रहा ॥
विद्या-विलास, गान रहा, छक्षवाद को ।
आनन्द-कथा, व्याधि-नदी, में डुबो रहा ॥
माने न व्यास, कौन गिने, शंकरादि को ।
कोरा लबार, लएठ बड़ों, को बिगो रहा ॥

अर्थाभिमानी

(दोहा)

भूला तू भगवान को, रे ! मदमत्त अजान ।
पोच प्रतिष्ठा का वृथा, करता है अभिमान ॥

(गीत)

तेरे अस्थिर हैं सब ठाठ ,
बाबा क्यों घमण्ड करता है ।
भिक्षुक और मेदिनी-नाथ, भव तज भागे रीते हाथ ,
क्या कुछ गया किसी के साथ, तो भी तू न ध्यान धरता है ।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
उतरी लड़काई की भङ्ग, तड़का तरुणाई का तङ्ग ,
जमने लगा जरा का रङ्ग, भूला नेक नहीं डरता है ।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥

होगा मरण काल का योग तुझ से छूटेंगे सुख-भोग,
आकर पूछेंगे पुर-लोग, क्यों र अभिमानी मरता है।
ते० म स० भा ध० करता है॥
प्यारे चेत प्रमाद विसार करता औरों का उपकार,
होकर स्वामी को घर भार, यों सद्गुरु सीख करता है।
ते० म स भा ध करता है॥

बुढ़ापे का पछतावा

(दोहा)

आय बुढ़ापा देह के हाल गये सब खोय।
तृष्णा-तरुणी का अरे लालिपा अबतो खोय॥

(गीत)

रस चाख चुका सब जीवन का
पर लालच हा! न मिटा मन का।
गत शैशव वसन्त उड़ गया उमगा नव यौवन फूल गया
उपजाय जरा तन सूख गया अटका लाटका लटकापन + का।
र चा चु स जी प ला हा० मि मन का॥
कुल से सविलास विहार किये अनुकूल भले परिवार किये,
विधि के विपरीत विचार किये पर ध्यान धरा वसुधा धन का।
र चा० चु स० जी प० ला हा मि० मन का॥

+ लटकापन = लाठी के सहारे लपकना या चलना

पिछले अपराध पछाड रहे, अब के अघ दोष दहाड रहे,
उर दु:ख अनागत फाड रहे, भयका भय शोक-हुताशन का।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का॥
रच ढोंग प्रपञ्च पसार चुका, सब ठौर फिरा झख मार चुका,
शठ शकर साहस हार चुका, अब तो रट नाम निरञ्जन का।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का॥

निषिद्धोन्नति

(दोहा)

उपजावे जो जाति में, वैर, विरोध, घमण्ड।
ऐसी उन्नति से उठें, ऊत असुर उद्दण्ड॥

(गीत)

रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर।
जिसके साथी लघु छाया के, उपजें ताड-खजूर।
फल-खोआ ऊँचे चढते हैं, गिरें तो चकनाचूर॥
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥
जिससे मान बढे मूढों का, पण्डित बने मजूर।
आदर पावे वाम बमा की, ठोकर खाय कपूर॥
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥
जिस के द्वारा उच्च कहायें, कृपण, कुचाली, क्रूर,
मुक्ता बने न्याय-सागर के, हठ-सर के शालूर।
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥

जिस के उर में शीतलता आए मरा चाहे भरपूर,
हा ! शंकर पापी बन बैठे, पुण्य-समर के शूर।
रहो रे साधो, उस कुमति से दूर ॥

धर्मधुर-धर

(दोहा)

जो बड़भागी साहसी, करते हैं शुभ काम।
रहते हैं संसार में जीवित उनके नाम ॥

(गीत)

प्रभु-पद धार धर्म के काम,
धोरी-धीर-वीर करते हैं।
करते उत्तम धर्मारम्भ, सुकृती गावें सुकृत-स्तम्भ
मानी निरभिमान निर्दम्भ दुष्टों से न कभी डरते हैं।
प्र० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥
करके अनुत्साह के नाश उर उत्साहामृत का प्रकाश,
करते कठिनाई का नाश संकट औरों के हरते हैं।
प्र० धा० ध० धी० धी० करते हैं ॥
प्यारे पौरुष प्रेम पसार, बिखरें विद्या-बल विस्तार,
बाँटें निज-कृत आविष्कार, उद्यम देशों में भरते हैं।
प्र० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥

प्रेमी पूरा सुयश कमाय, ब्रह्मानन्द महा फल पाय,
शंकर स्वामी के गुण गाय, ज्ञानी शोक सिन्धु तरते हैं।
ब्र० वा० ध० धो० धी० करते हैं॥

वैदिक वीरो उठो

(दोहा)

शंकर के प्यारे बनो, वैर-विरोध विसार।
वैदिक वीरो जाति का, कर दो सर्व-सुधार॥

(गीत)

वैदिक वीरो सुभट कहाय,
उलटी मति को मार भगादो।
गरजो ब्रह्मचर्य-बल धार, बाँधो परहित के हथियार,
अपना प्रेम-प्रताप पसार, दुर्गुण-गढ़ में आग लगादो।
वै० वी सु० उ० म० मा० भगादो॥
भ्रम का नाश करो भरपूर, छल का करदो चकनाचूर,
पटको घटिया-पन को दूर, बढ़िया कुल की ज्योति जगादो।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो॥
अनुचित विषयों को सहार, फिर आलस्य-असुर को मार,
करलो उद्यम पै अधिकार, उन्नति ठगियों को न ठगादो।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो॥

विचारो वैर-विरोध विहाय मानव-मण्डल को अपनाय
सब से विश्व-बढ़ाइ पाप जग में शंकर के गुण गावो।
है की मु प म० सा मगावो ॥

पादप-शिक्षा

(भजन)

करना उपकार
तरु समूह से सीखो।
ये गुल्म लता तरु सारे, हैं जीवन-प्राण हमारे
प्यार परम उदार।
तरु समूह से सीखो ॥
नित श्रम-दान करत हैं हम लोग उदर भरते हैं,
अपन बारम्बार।
तरु-समूह से सीखो ॥
दल मूल पुष्प फल मेवा सब को बाँटें बिन सेवा
तन-मन कर दातार।
तरु समूह से सीखो ॥
वन आपदि रोग निकालें पुनि पवन शुद्ध कर पालें
परिमल-पु ज पमार।
तरु-समूह से सीखो ॥

खींचें अवनी के जल को, देते हैं बल बादल को,

समझो वीर विचार।

तरु-समूह से सीखो ॥

ये उपादान वस्त्रों के, अवयव अनेक अस्त्रों के,

सब शस्त्रों के थार।

तरु-समूह से सीखो ॥

चुपचाप खड़े रहते हैं, गरमी-सरदी सहते हैं,

रोकें धूप-तुषार।

तरु-समूह से सीखो ॥

उपकार अलौकिक इनका, करता है तिनका तिनका,

शंकर कहे पुकार।

तरु-समूह से सीखो ॥

पछतावा

(भजन)

खेलत खेल घने दिन बीते।

हँस-हँस दाव अनेक लगाये, एकहु बार न जीते,

जुरि-मिल लूट लैगये ज्वारी, करि-करि मनके चीते।

खेलत खेल घने दिन बीते ॥

अबलों निपट नाश की मदिरा, रहे मोह-वश पीते,

शंकर सरबस हार चले हम, हाथ पसारे रीते।

खेलत खेल घने दिन बीते ॥

दस बीत चुके

(दोहा)

भूला भोग विलास में अब लौं रहा अचेत।
फल की आशा छोड़ दे उजड़ा जीवन-खेत॥

(गीत)

चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर॥
खेल पसारे बालकपन में उकसे रहे किशोर
आगे बढ़ कर चन्द्र मुखी के चाहक बने चकोर।
चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर॥
पकड़े प्राण प्रिया वनिता ने चमकाये चित-चोर
मारे कन्दुक मदन-दर्प के गाल करील कठोर।
चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर॥
दुहिता पुत्र घने उपजाये भोग बटोर-बटोर
अगुआ बने बड़े कुनबा के पकड़ा पिछला छोर।
चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर॥
पटके गाल अङ्ग सब सूखे भटके संकट घोर
शंकर शीत जरा ने जकड़े उतरी मद की डोर।
चलोगे बाबा अब क्या प्रभु की ओर॥

विगतयौवना

(दोहा)

हा ! तारुण्य-तड़ाग के, सूख गये रस-रङ्ग ।
बुढिया तो भी पेठ के, सुनती फिरे प्रसङ्ग ॥

(गीत)

बीता यौवन तेरा,
(री) बुढिया, बीता यौवन तेरा ॥
धौरा रङ्ग जमाय जरा ने, कृष्ण कचों पर फेरा ,
झाड़े दाँत, गाल पटकाये, कर डाला मुख भेरा ।
(री) बुढिया, बीता यौवन तेरा ॥
आँखों में टेढी चितवन का, चोर न रहा बसेरा ,
फीका आनन-मण्डल मानो, विधु बदली ने घेरा ।
(री) बुढिया, बीता यौवन तेरा ॥
*झोंझ बया के से कुच झूले, फाड़ +मदन का डेरा ,
अब तो पास न झाके कोई, रसिया रस का चेरा ।
(री) बुढिया, बीता यौवन तेरा ॥
चेत बुढापे को मत खोवे, करले काम सवेरा ,
अपनाले शकर स्वामी को, मन्त्र समझले मेरा ।
(री) बुढिया, बीता यौवन तेरा ॥

(*झोंझ = घोंसला) (+मदन का डेरा = कञ्चुकी)

बुढ़ापा

(भजन)

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

बल बिन अंग भये सब ढीले सुन्दर रूप नसायो
पटके गाल गिरे दाँतन की कतार पै रँग छायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

हाले शीश कमान भई कटि डाँगन्हूँ बल पायो ,
काँपे हाथ बोगरी के बल डग-मग पाँव चलायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

ऊँचा सुने धूँधरी दीखे वस्तु बोध बिसरायो
मन में भूख भरी त्यों तनमें रोग-समूह समायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

खीज भयो बेढीक डोकरा नाम खोज पर धर्यो
नाना व्याधि बाल-मण्डल में नाना भाँति कढ़ायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

नातेदार कुटुम्ब परोसी सब ने मान घटायो
कहत न माने पढ पापी ने घर-घर नाच नचायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

पास न मोहन पूत-पतोहू, पौरी में पधरायो
बूँद बूँद जल टूक-टूक को तौंस-तौंस तरसायो ।

कैसो कठिन बुढ़ापो आयो ॥

महा पुरुष मृत्यु को तर जाते हैं

(दोहा)

मरते जाते हैं घने, मानव जीवन भोग।
तरजाते हैं मृत्यु को, शंकर विरले लोग॥

(सगणात्मक सवैया)

तन त्याग प्रयाण किये सब ने, न टिके गतिशील गृही, न वनी।
धर मृत्यु-महासुर ने पटके, कुचले कुल रंक बचे न धनी॥
भव-सागर को न तरे जड़ वे, जिनकी करनी बिगड़ी, न बनी।
बिन भेद मिले प्रभु शंकर से, प्रतिभा विरले बुध पाय घनी॥

जीवनान्त

(दोहा)

जीवन पूरा हो लिया, अटका अन्तिम काल।
पकड़ी चोटी मृत्यु ने, अब न बचोगे लाल॥

(गीत)

बारी अब अन्तकाल की आई।
भोग-विलास भरे विषयों की, करता रहा कमाई,
आज साज सब देने पर भी, टिकता नहीं घड़ी भर भाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥
व्याकुल वनिता ने अँसुओं की, आकर धार बहाई,
पास खड़ा परिवार पुकारे, रोक न सकी सनेह-सगाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥

लगे न औषधि कविराजों न मारक व्याधि बताई
नेक न चेत रहा चेतन को बिछुड़ी गैल गमन की पाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥
माया-पखेरू तन-पंजर से, भागा कुछ न बसाई,
काल पाय इम सबकी होगी, हा! शंकर इस भाँति विदाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥

मृतक शरीर

(दोहा)

ज्ञान क्रिया भारे नहीं चेतन जड़ का योग।
ऐसे दैहिक द्रव्य को मृतक मानते लोग॥

(गीत)

घर में रहा न रहने वाला॥
खोल गया सब द्वार किसी में लगा न फाटक-ताला
आप सिधारा सदन चली से घेर पसीट निकाला।
घर में रहा न रहने वाला॥
जाने किस पुर की बाखर में अबकी बार बिठाला
हा! प्रासाविक परिवर्तन का अटका कष्ट-कसाला।
घर में रहा न रहने वाला॥
रंग बिगाड़ दिया मंदिर का अंग अंग कर काला
औंधा हुआ अमल्लक जाता कहीं न मोल बताला।
घर में रहा न रहने वाला॥

शंकर ऐसे परबन्धन ने, पड़े न पल को पाला,
आग लगे इस बन्दीगृह में मिले महा सुख-शाला।
घर में रहा न रहने वाला॥

मरण

(भजन)

घर को छोड़ गयो घरवारो।
बारह बाट आज कर डारो, अपनो कुनबा सारो,
भोग विलास बिसार अकेलो, आप निशंक सिधारो।
घर को छोड़ गयो घरवारो॥
शोभा दूर भई बाखर की, धाय धसौ अँधियारो,
चारों ओर उदासी छाई, बिपत न एकहु टारो।
घर को छोड़ गयौ घरवारो॥
आओ रे मिल मित्र-मिलापी, इत-उत खोज निहारो,
कौन देश में जाय बिराजा, कौन गैल गहि प्यारो।
घर को छोड़ गयो घरवारो॥
अब काहू विधि नाहिं मिलैगो, मिट गयौ मेल हमारो,
शंकर या सूने मंदिर को, धीरज धार पजारो।
घर को छोड़ गयौ घरवारो॥

सौंदर्य की दुर्दशा

(सोरठा)

हाय! अचानक आज रूप-गर्विता मर गई।
छोड़ गया रसराज घर को सूना कर गई॥

(गीत)

नवेली अलबेली उठ बोल।
वेणी-नागिन विकल पड़ी है शिथिल माँग मुख खोल
खंजरीट मृग खोज रहे हैं नयन-सुघरता की पोल।
नवेली अलबेली उठ बोल॥
लाल अधर बिम्बा फल सूखे पड़ गए पीत कपोल,
दशन-मोतियों की लड़ियों का अब न रहा कुछ मोल।
नवेली अलबेली उठ बोल॥
कंबु-कण्ठ कल-कण्ठ न कूके धधकी धमक अतोल
पड़ें न रसियों की छतिया मे कठिन पयोधर गोल।
नवेली अलबेली उठ बोल॥
परली सब कोमल अंगों में अकड़ ठठाक-टटोल
हा! शंकर क्या अब न बजेगा मदन-विजय का ढोल।
नवेली अलबेली उठ बोल॥

गर्दभ-दुर्दश्य

(दोहा)

देखी खर की दुर्दशा, उपजा उत्तम ज्ञान।
शकर ने देहादि का, दूर किया अभिमान॥

(गीत)

घूरे पर घबराय रहा है,
देखो रे इस व्याकुल खर को।
और घने रासभ चरते थे, बँगने धार पेट भरते थे,
छोड इसे अनखाय कुम्हारी, सब को हाँक लेगई घर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
आगे गुडहर, घास नहीं है, गदली पोखर पास नहीं है,
हा! पानी बिन तडफ रहा है, लोटे-पीटे इधर-उधर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
लीद-लपेटा विकल पडा है, चक्र आँच का निकल पडा है,
मूत-कीच में उछल रही है, ओछी पूँछ डुलाय चमर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
घायल घोर कष्ट सहता है, ठौर ठौर शोणित बहता है,
मार मक्खियाँ भिनक रही है, काट रहे हैं कीट कमर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
कुक्कुर तगड तोड चुके हैं, वायस आँखियाँ फोड चुके हैं,
गीदड़ अँतड़ी काढ़ चुके हैं, ताक रहे हैं गिद्ध उदर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥

मरण-काल ने दीन किया है जरागति ने बलहीन किया है,
मींच मींच कर मींच रही है खींच रही है मरनगर को।
धू० म० र० ध० ह० ध्या० धर को॥
जीवन-भास निकास चुका है भोग-विलास विनाश चुका है,
जीव-हंस अब उड़ जायगा त्याग पुराने तन-पंजर को।
धू० म० र० ध० ह० ध्या० धर को॥
ऐसा देख भयङ्कर हमको कातर चित्त न होगा किसका,
तज अभिमान सम्हारे याद करुणा-सिंधु सत्य शंकर को।
धू० म० र० ध० ह० ध्या० धर को॥

दरिद्रता अर्थात् कंगाली

(भजन)

कंगाली में कंगाल के
सब ढंग बिगड़ जाते हैं।
जिस के दिन खोटे आते हैं सुखमय भोग भाग जाते हैं
संशय नीच-सोच खाते हैं उस कुलीन कुल-पालक के-
दाम सभ्यता मद जाते हैं।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं॥
घर के घोर कष्ट सहते हैं भूखे रोग भरे रहते हैं,
लक्ष्मी धनकटनी कहते हैं मुखियापी बिन माया के-
सकुचाय सुकड़ जाते हैं।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं॥

प्यारे प्यार नहीं करते हैं, मित्र माँगने से डरते हैं,
नातेदार नाम धरते हैं, कब तक रोटी दाल के-
जब लाले पड़ जाते हैं।
सब ढग बिगड जाते हैं॥
दूर न दीन दशा होती है, लघुता लोक लाज खोती है,
प्रतिभा सुधि विहाय रोती है, 'शकर' धर्म-मराल के-
व्रत-पख उखड जाते हैं।
सब ढग बिगड़ जाते हैं॥

तोते पर अन्योक्ति

(दोहा)

लाद पराये धर्म का, सकट-भार अतोल,
तोता पिजँडे में पडा, बोल मनुज के बोल॥

(गीत)

तोते तू तेरे करतब ने,
इस बन्धन में डाला है रे!
सुन सीखे जो शब्द हमारे, उन को बोल रहा है प्यारे,
मिट्ठू तुझे इसी कारण से, कब रसियों ने पाला है रे।
तो० ते० क० इ० ब० डाला है रे!
हा! कोटर में वास नही है, प्यारा कुनवा पास नहीं है,
लोह-तीलियों का घर पाया, अटका कष्ट कसाला है रे।
तो० ते० क० इ० ब० डाला है रे!॥

सुआ सैकड़ों पहन बास पकड़ बिल्लियों ने ला डाला,
तू भी फस कुच के मुख से प्राण बचाय निकलता है रे।
सो० खे० क० दु० बं० डाला है रे।
पञ्ज नहीं छुड़ा सकते हैं, क्या ये पंख बचा सकते हैं,
चोंच न काटगे पिंजड़ा को, शंकर ही रखवाला है रे।
सो० ख० क० दु० बं० डाला है रे।

योग पर अन्योक्ति

(सोरठा)

आज विरह की आग तुम से मिलते ही बुझे।
मुझ अबला का त्याग शंकर, अब आना नहीं॥

(गीत)

आज मिला बिछुड़ा वर मेरा
पाया अचल सुहाग री।
अबला अंग वियोगानल का ताप बुझाया नीरज-जल का,
डूबी सुरत प्रेम-सागर में बुझी न उर की आग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥
इस तन जोग लगाती डोली ठगियों की ठग गई ठठोली
हुआ न सिद्ध मनोरथ लोभी और बढ़ा अनुराग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥

ठौर-ठौर भटकी भटकाई, सुधि न प्राणवल्लभ की पाई,
साहस ने पर हार न मानी, लगी लगन की लाग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥
एक दया-निधि ने कर दाया, तुरत ठिकाना ठीक बताया,
पहुँची पास पिया शंकर के, इस विधि जागे भाग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥

अपूर्व चिंतन

(भजन)

कौन उपाय करूँ पिय प्यारो–
साथ रहै पर हाथ न आवै।
चहुँ दिसि दौरी द्वन्द्व मचायो, अचल अचचल पकड़ न पायौ,
खुलत न खेलत खेल खिलाड़ी, मोहि खिलौना मान खिलावै।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारो,
साथ रहै पर हाथ न आवै॥
पलभर को कबहूँ न बिसारे, हिल-मिल मेरौ रूप निहारे,
रसिक शिरोमणि मो विरहिन को, हा अपनो मुखड़ा न दिखावै।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारो,
साथ रहै पर हाथ न आवै॥

मायामय मनमोहन हारे, अद्भुत योग-वियोग पसा
या विहार-बल के योगम को थाप न मोगे मोहि सुगा
कौन उपाय करूँ पिय प्यारो
साध रहै पर हाथ न आवै।
करि हारी साधन बहुतेरे, होत न सिद्ध मनोरथ मे
सोच कहा शंकर स्वामी की कुटिल कर्म-गति नाच नचा
कौन उपाय करूँ पिय प्यारी,
साध रहै पर हाथ न आवै।

अमर मिलन

(भजन)

आज अली बिछुरी पिय पायी—
मिट गये सकल अंधेरा री।
सागर ताल नदी नद मारे, ग्राम नगर गिरि कानन सा
एक न छोड़ो ढूँढ़ फिरी मैं भटकी देश विदेश
आ ज अ लि पि पा मि स ॥
मैं विरहिन एसी चौरासी लीकत डोली कपट कहा
घर घर जोगन बहकाइ कर कोरे उपदेश
आ ज अ लि पि पा मि स ॥
बीत गइ सारी तरुणाइ पर प्यारे की बाँग न पा
जोबन दामन मो दुखिया के बीते हैगय केश
आ ज अ लि पि पा मि स ॥

योगी एक अचानक आयो, जिन मेरो भरतार बतायो,
सो शकर साँचो हितकारी, भ्रम-तम पटल-दिनेश री।
आ० अ० वि० पि० पा० मि० स०॥

प्रयाण पर अन्योक्ति

(दोहा)

जीव जन्म से अन्त लों, आयु यथा क्रम भोग।
करते हैं ससार से, योग विसार वियोग॥

(गीत)

है परसों रात सुहाग की,
दिन वर के घर जाने का।
पीहर में न रहेगी प्यारी, हा होगी हम सब से न्यारी,
चलने की करले तैयारी, बन मूरति अनुराग की,
धर ध्यान उधर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥
पातिव्रत से प्यारे पति को, जो पूजेगी धार सुमति को,
तो न निहारेगी दुर्गति को, लगन लगा अति लागकी,
प्रण रोप निडर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥

गङ्गा पावे सत्य वचन की, यमुना भावे सेवा तन की
हो सरस्वती श्रद्धा मन की, महिमा प्रकट प्रयाग की,
रच रूपक हर ज्ञान का।
दिन हर के घर जाने का॥
शंकर-पुर को तू जावेगी, सुरत-संयोगामृत पावेगी
गीत महोत्सव के गावेगी, सुधि बिसार कुल-त्याग की,
सखि सोच न कर जाने का।
दिन हर के घर जाने का॥

मृत्यु

(भजन)

साँची मान सहेली
परसों पीतम लैबे आवैगी री।
मात पिता भाई भौजाई, सबसों राम समझ-सगाई
दो दिन हिल-मिल काट यहाँ से फिर को तोहि पठावेगी री।
साँ मा स प पी लै आवैगी री॥
अबकी ब्रेना नाँहि टरैगी जाको पिय के संग परैगी
हम सब को तेरे बिछुरन की दारुण शोक सतावैगी री।
साँ मा स प पी लै आवैगी री॥
जाने की तैयारी करले तोशा बाँध गैल को धरले
हाथा-हाथ बिदा की मिरियाँ का पकवान बनावैगी री।
साँ मा स प पी लै आवैगी री॥

पुर बाहरलों पीहर वारे, रोवत साथ चलेंगे सारे,
शङ्कर आगे आगे तेरो, डोला मचकत जावैगो री।
साँ० मा० स० प० पी० लै० आवैगो री॥

अन्योक्ति से उपदेश

(दोहा)

ज्ञातयौवना हो चुकी, गुड़ियों से मत खेल।
पूरा पूरा कर सखी, शंकर पिय से मेल॥

(गीत)

सजले साज सजीले सजनी,
मान विसार मनाले वर को।
गौरव अनुराग मलवाले, मेल मिलाप तेल डलवाले,
न्हाले शुद्ध सुशील सलिल से, काढ कुमति-मैली चादर को।
म० सा० स० स० मा० म० वर को॥
ओढ सुमति की उज्ज्वल सारी, सद्गुण-भूषण धार दुलारी,
सीस गुँदाय नीति-नाइन से, कर टीका करुणा-केसर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥
आदर-अञ्जन आँज नवेली, खाकर प्रेम-पान अलवेली,
धार प्रसिद्ध सुयश की शोभा, दमकाले आनन सुन्दर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥

मेरी बात मान अवसर है, यौवनकाल बीतने पर है,
तू यदि अब न रिझवेगी तो, फिर न सुहावेगी शंकर को।
स० सा० स स० मा म० वर को॥

चेतावनी

(भजन)

लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ।
मंजिल दूर पोच रज पै चढ़, घर से चलो अबेरौ
सूरज अस्त भयौ मारग में किधौ न रैनबसेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
भायौ रात भयानक वन में सोहि नींद ने घेरौ
चपल तुरंग अचानक चौंके स्यंदन सर में गेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
सूत पूत कीचड़ में कचरौ जीवित बचौ न चेरौ
तू अपनी पूँजी ले भागौ अटकौ आप लुटेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
छिन में छीन कमाई सारी रीते हाथ खदेरौ
सो न रह्यो अब जाहि कहत हो शंकर मेरौ-मेरौ।
लुट गयौ धींग धीन धन तेरौ॥

सुधारक सिद्ध-समूह

(दोहा)

ब्रह्म-विवेकानन्द से, जीवन-जन्म सुधार ।
करते हैं संसार का, उपदेशक उद्धार ॥

(सुन्दरी सवैया)

इस स्वर्ग-सहोदर भारत का, बुध वैदिक वीर सुधार करेंगे ।
अपनाय प्रथा मुनि मण्डल की, कवि शङ्कर धर्म-प्रचार करेंगे ॥
अनुकूल अखण्ड तपोबल पै, व्रतशील निरन्तर प्यार करेंगे ।
कर मेल अमायिक आपस में, सुकृती सबका उपकार करेंगे ॥

विवेक से शान्ति

(दोहा)

समझी थी संयोग को, मन की भूल वियोग ।
आज विवेकानन्द ने, दूर किया भ्रम रोग ॥ १ ॥
वस्तु रूप से एक है, आकृति जाति अनेक ।
देह-देह में जीव का, दीपक तुल्य विवेक ॥ २ ॥

आर्त्त-नाद

(दोहा)

डूबे शोक-समुद्र में, भारत के सुख-भोग ।
हा ! निष्ठुर दुर्दैव ने, लूट लिये हमलोग ॥

धर्मवीरों की कर्म-वीरता

(दोहा)

कादो मानव जाति के, जीवन का शुभ सार।
साधु, सुधारो देश को सामाजिक बल भार॥

(मात्रात्मक छावली)

जिनको उत्तम उपदेश, महा फल पाया।
उन श्रमणों ने अखिलेश एक अपनाया।

(१)

बन गये सुबोध विनीत महा-अनुरागी।
उमगे बल पौरुष पाय शिथिलता त्यागी॥
कर सिद्ध विविध व्यापार, कर्म जब जागी।
उमति का देख उठान अधोगति भागी॥
फटके जिन के न समीप मोह-मय-माया।
उन श्रमणों ने अखिलेश एक अपनाया॥

(२)

सब ने सब दोष बिसार, दिव्य गुण धारे।
तज बैर निरन्तर प्रेम-प्रसंग प्रचारे॥
चेतन जीवित अपि देव पितर सत्कारे।
कर दिये दूर छल-दर्प कुमति के मारे॥
जिनके कुल में सुख-मूल सुधार समाया।
उन श्रमणों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(३)

मगल-कर वैदिक कर्म, किया करते हैं।
ध्रुव धर्म-सुधा भर पेट, पिया करते हैं॥
भर शक्ति यथा-विधि दान, दिया करते हैं।
कर जीवन, जन्म पवित्र, जिया करते हैं॥
जिनका शुभ काल कुयोग, मिटा कर आया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(४)

द्विज ब्रह्मचर्य-व्रत-शील, वेद पढते हैं।
गौरव गिरि पै प्रण रोप, रोप चढते हैं॥
अभिलषित लक्ष्य की ओर, वीर चढते हैं।
गुरु-कुल सागर से रत्न, रूप कढते हैं॥
जग-जीवन जिनके वश, विटप की छाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(५)

नव द्रव्य-जन्य गुण, दोष भेद, पहचाने।
कृषि-कर्म, रसायन, शिल्प, यथा विधि जाने॥
दर्शन, ज्योतिष, इतिहास, पुराण वखाने।
पर जटिल गपोड़े वेद, विरुद्ध न माने॥
सब ने कोविद, कविराज, जिन्हें बतलाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक [illegible]

(६)

विदुषी दुखहिन दीनपद, विज्ञ करते हैं।
बल-नाशक बाल-विवाह दलन करते हैं।
विधवा-वर वन वैधव्य दूर करते हैं।
अथवा नियोग-फल सौंप शोक हरते हैं॥
जिन की विधि न कुबोर निषेध मिटाया।
उन समर्थों ने अखिलेश एक अपनाया॥

(७)

ऋजु-गति शासन को शुद्ध, न्याय कहते हैं।
कटु कुटिल नीति से दूर सदा रहते हैं॥
समुचित पद्धति की गम्य गैल गहते हैं।
अनुचित कुचाल का रूप नहीं सहते हैं॥
अभिमान अधम का भाव न जिसको भाया।
उन समर्थों ने अखिलेश एक अपनाया॥

(८)

पर द्रोह द्वेष परस्पर निवार जाते हैं।
व्यवसाय शील सब ठौर, सुयश पाते हैं॥
अति शुद्ध अनामिष अन्न सरस खाते हैं।
पर कुमाकुल गन्ध धूम्र, न दिखलाते हैं॥
जिन का व्यवहार विकास प्रशस्त कराया।
उन समर्थों ने अखिलेश एक अपनाया॥

(९)

हितकर अपना प्रत्येक, शुद्ध जीवन से।
मन-शुद्ध, किये मल दूर, गिरा से, तन से॥
मठ कपट-मतों के फोड़, उग्र खण्डन से।
जड़-पूजन की जड़ काट, मिले चेतन से॥
जिनके आचरण विलोक, लोक ललचाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(१०)

रच ग्रन्थ घने प्रिय पत्र, अनेक निकाले।
बन कर गोपाल, अनाथ, अकिञ्चन पाले॥
नर-नारि अवैदिक भिन्न, भिन्न मत वाले।
रच वर्ण यथा गुण कर्म, शुद्ध कर डाले॥
शंकर ने जिन पर धर्म, मेघ बरसाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

देश-भक्तों का विलाप

(सुन्दरी सवैया)

हम दीन-दरिद्र हुताशन में, दिन-रात पड़े दहते रहते हैं।
बिन मेल विरोध महानन्द में, मन बोहित से बहते रहते हैं॥
कवि शंकर काल कुशासन की, फटकार कड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत के गत गौरव की, अनुभूत कथा कहते रहते हैं॥

रामलीला

(दोहा)

साधन है सद्धर्म का, राम-चरित्र उदार ।
प्यारे अपना लो इसे जीवन-जन्म सुधार ॥

(भावात्मक लावनी)

प्रभु शंकर को अपनाय, स्वभाव सुधारो ।
पढ़ राम चरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥

(१)

सुत-हीन दीन अवधेश, चला घबराया ।
गुरु से सदुपाय विधान सुना कर पाया ॥
शृंगी ऋषि वरद सुसाध सुयाग रचाया ।
लाकर हवि-शाप सगर्भ हुई नृप-जाया ॥
यश-महिमा यों सब ओर सुबुध विस्तारो ।
पढ़ राम चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(२)

धनि कौशल्या सुख-सदन, राम जनमाये ।
केकय-तनया ने भरत भागवत जाये ॥
सौमित्रि सहोदर लखन चरित्र कहाये ।
सुत चार-सुपुरुष रूप नृपति ने पाये ॥
जपलें इस भाँति सुपुत्र, मिलें ×फल चारो ।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र मित्र उर धारो ॥

× फल चारो = धर्म अर्थ काम मोक्ष ।

(३)

प्रकटे अवनीश-कुमार, मनोहर चारो ।
करते मिल बाल-विनोद, बन्धु वर चारो ॥
गुरुकुल में रहे समोद, धर्म-धर चारो ।
पढ वेद बोध बल पाय, बसे घर चारो ॥
इमि ब्रह्मचर्य-व्रत धार, विवेक पसारो ।
पढ राम चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(४)

रघुराज, रजायुस पाय, बाण, धनु धारे ।
मुनि साथ राम अभिराम, सबन्धु सिधारे ॥
गुरु कौशिक से गुण सीख, सामरिक सारे ।
मख मगल-मूल रखाय, असुर सहारे ॥
ऋषि-रक्षक यों बन वीर, दुष्ट-दल मारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५)

मुनि गाधि पुत्र भट श्याम, गौर बल-धारी ।
पहुँचे मिथिलापुर राज, विभूति निहारी ॥
शिव-धनुष राम ने तोड, पाय यश भारी ।
ब्याही विधि सहित समोद, विदेह-कुमारी ॥
करिये इस भाँति विवाह, कुलीन कुमारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(६)

अब सजन जानकी, राम, अवध में आये।
घर घर बाजे सुख-मूल विनोद-बधाये॥
हित प्रेम, राज-सुख और, प्रजा पर छाये।
सब ने हिल वैर-विरोध, बिसार बिताये॥
इस भाँति रहो कर मेल भले परिवारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(७)

भूप ने सुख का सब ठौर विलोक बसेरा।
कर सोच कहा यह ईश सुयश है तेरा॥
अब राम बनें युवराज भरे मन मेरा।
रवि-वंश छिपे कर अस्त अधर्म-अँधेरा॥
सुत सज्जन का इस भाँति सुभग विचारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(८)

अभिषेक-कथा सुन मित्र, अमित्र उदासी।
उमड़ी मिल सब की चाह कल्प-लतिका सी॥
वर कैकय-तनया माँग, उठी कुमता-सी।
युवराज भरत हो राम बने बन-वासी॥
कर यों कुनारि पर प्यार, न जीवन हारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(९)

सुन, देख, कराल, कठोर, कुहाव-कहानी ।
बरजी परिणाम सुझाय, न समझी रानी ॥
जब मरण-काल की व्याधि, कु-पति ने जानी ।
उमड़ा तब शोक-समुद्र, वहा वरदानी ॥
वर नारि अनेक न उम्र, अनीति उघारो ।
पद राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१०)

सुधि पाकर पहुँचे राम, राज-दर्शन को ।
सकुचे पग पूज कुदृश्य, न भाया मन को ॥
सुन वचन पिता के मान, धर्म-पालन को ।
कर जोड़ कहा अब तात ! चला मैं वन को ॥
पितु-पायक यों वन धाम, धरा-धन वारो ।
पद राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(११)

मिल कर जननी से माँग, असीस, विदाई ।
हठ जनक सुता की भक्ति, भरी मन भाई ॥
सुन लक्ष्मण का प्रण-पाठ, कहा चल भाई ।
घर तज सानुज-सस्त्रीक, चले रघुराई ॥
निज नारि सती, प्रिय बन्धु, न वीर विसारो ।
पद राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१२)

पहुँचे पुनि पितु के पास अवध के प्यारे ।
झट भूषण, वस्त्र उतार, मातु-पद धारे ॥
सब से मिल-भेंट सु भोग विलास बिसारे ।
रथ पै चढ़ वन की ओर, सदारा सिधारे ॥
धन धर्म-धीर इस भाँति स्वभाव सँवारो ।
यह राम-चरित्र पवित्र चित्र उर धारो ॥

(१३)

तमसा तक पहुँचे लोग प्रेम-रस-पागे ।
तट पै निस चैन प्रसुप्त परे सब त्यागे ॥
सिय राम सचिव सौमित्रि चल दिये जागे ।
उठ भोर गये घर लौट अधीर अभागे ॥
जन को इस भाँति वियोग उदधि से तारो ।
यह राम-चरित्र पवित्र चित्र उर धारो ॥

(१४)

रथ शृंगबेरपुर-तीर तीर-पर आये ।
गुह ने मिल-भेंट समोद अपार टिकाये ॥
सब ने वह रात बिताय प्रात फल खाये ।
रघुनायक ने सुमन्त्र सचिव लौटाये ॥
सुजनों पर यों अनुराग, विभूति बगारो ।
यह राम-चरित्र पवित्र चित्र उर धारो ॥

(१५)

सुरसरिता तीर, नवीन, विरक्त पधारे।
पग धोय धनुक+ने पार, तुरन्त उतारे॥
पहुँचे प्रयाग व्रत-शील, स्वदेश-दुलारे।
मुनि-मण्डल ने हित प्रेम, पसार निहारे॥
इस भाँति अतिथि को पूज, सदय सत्कारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१६)

गुरु भरद्वाज ने सुगम, गैल बतलाई।
यमुना को उतरे सहित, सीय दोऊ भाई॥
निशि वाल्मीक मुनि निकट, सहर्ष बिताई।
चढ चित्रकूट पै विरम, रहे रघुराई॥
इस भाँति सहो सब कष्ट, दयालु उदारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१७)

वन से न फिरे, रघुनाथ, न लक्ष्मण सीता।
पहुँचा सुमन्त्र नृप तीर, धीर धर जीता॥
बिलखे नर-नारि निहार, खडा रथ रीता।
दशरथ का जीवन-काल, राम बिन बीता॥
मरना इस भाँति न ज्ञान, गमाय गमारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

+ धनुक = केवट, मल्लाह।

(१८)

गुरु ने परिताप अँगार, अनेक बुझाये।
सुधि भेज भरत शत्रुघ्न, तुरन्त बुलाये॥
नृप का दाह-दाह कराय सुधी समझाये।
पर वे परपद का लोभ न मन में लाये॥
बस अनधिकार की ओर, न वीर निहारे।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र वर प्यारे॥

(१९)

घर घोर अमङ्गल मूल, अनीति बिहारी।
समझी अवनति का हेतु, सगी महतारी॥
सकुचे रघुपति की गैल चले मग भारी।
पग छिपा भरत के साथ दुखी दल भारी॥
धर पकड़ पैर की धूल फोड़ फटकारे।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र वर प्यारे॥

(२०)

मिल भेंट लिया गुह साथ, प्रयाग अन्हाये।
चढ़ चित्रकूट पर प्रेम, प्रवाह बहाये॥
प्रभु पाहि नाम कर रुदन, प्रणाम सुनाये।
झपटे सुन राम उठाय, कण्ठ लिपटाये॥
इस भाँति मिले कुल-धर्म अशोक-दुलारे।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र वर प्यारे॥

(२१)

सब ने मिल भेंट अनिष्ट, प्रसङ्ग बखाना।
सुन मरण पिता का राम, कुढे दुख माना॥
पर ठीक न समझा लौट, नगर को जाना।
जड़ भरत+पादुका पाय, फिरे प्रण ठाना॥
व्रत-जल से विधि के पैर, सुपुत्र पखारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२२)

कर जोड-जोड, कर, यत्न, अनेक मनाये।
पर डिगे न प्रण से राम, महाचल पाये॥
हिय हार हार नर-नारि, अवध में आये।
बिन बन्धु भरत ने दीन, बन्धु अपनाये॥
प्रतिनिधि बन औरों की न, धरोहर मारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२३)

परिवार, प्रजा, कुल से न, कभी मुख मोडा।
मनु-हायन भर को नेह, विपिन से जोड़ा॥
नटखट वायस का अक्ष, मार शर फोड़ा।
गिरि चित्रकूट बहु काल, बिता कर छोड़ा॥
विचरो सब देश-विदेश, विचार प्रचारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

+जड़ भरत = राम के प्रेम से अधीर होकर सुधबुध भूल गये

(२४)

अब दण्डक वन का विम्य हरय मन भाया।
वध कर विराध को गाड़, कुयोग मिटाया॥
मुनि-मण्डल को पग पूज पूज अपनाया।
फिर पंचवटी पर आय बसे सुख पाया॥
समझे समाज के काज कृपा कर सारे।
यह राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(२५)

बरु फूल फल छवि राम-कुटी पर छाई।
जब सूर्पनखा नर-वेष अचानक आई॥
कुल-ओर मनोरथ सिद्ध नहीं कर पाई।
कर लक्ष्मण ने श्रुति-नाक विहीन हटाई॥
इमि एक नारि-मत-शीश रहो अब भारो।
यह राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(२६)

भगनी खर-दूषण-संग चढ़ा कर लाई।
रघुपति ने सब को मार झट जय पाई॥
फिर रावण को करतूत समस्त सुनाई।
सुन मान बहन की बात, चढ़ा झट भाई॥
धिक नाक कटाय न ठौर, ठौर मत मारी।
यह राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(२७)

चढ पञ्चवटी पर दुष्ट दशानन* आया।
मिल कर मारीच कुरग, बना रच माया॥
सिय ने पिय को पशु वध्य, विचित्र बताया।
झट राम उठे शर-लक्ष्य, पिशाच बनाया॥
छल-मैल हटा कर न्याय, सुनीर निथारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२८)

मृग भाग चला विकराल, विपति ने घेरा।
रघुनायक ने खल खेल, खिलाय खदेरा॥
शर खाय मरा इस भाँति, पुकार घनेरा।
चल, दौड सुहृद् सौमित्रि, दु ख हर मेरा॥
जमता न कपट का रग, सदैव लखारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२९)

सुन घोर अमगल-नाद, दुष्ट-सम्मति का।
सिय ने समझा वह बोल, प्रतापी पति का॥
उस ओर लखन को भेज, तोख दे अति का।
रह गई कुटी पर खोल, द्वार दुर्गति का॥
भ्रम, भेद, भूल, भय, शोक, लुकें ललकारों।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

---

*दशों दिशाओं में रावण का कोई रोकने वाला नहीं था इसी कारण से उसका एक नाम "दशानन" भी पड़ गया।

(२०)

मुनि बन पहुँचा अंधेरा, कुशील पुकारा।
पति जनक-सुता ने जान, मधुर सत्कारा॥
पकड़ी ठग न निज भीख, अमानुष धारा।
हित कर डुलटा का वज्र सती पर मारा॥
अधमाधम को सब साधु अधिक धिक्कारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२१)

हर जनक-सुता को मूढ़ महाधम लाया।
मगमें प्रचण्ड रख रोष जटायु गिराया॥
चढ़ व्योम-यान पर नीच निरङ्कुश आया।
रक्खी घर पाप कमाय हाय पर-जाया॥
मत चोर बनो कुल-बीर, मलिन विचारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(२२)

मृग-रूप निशाचर मार, फिरे रघुराई।
अध्वर में बन्धु विलोक विकलता छाई॥
मिल कर आश्रम की ओर गये दोऊ भाई॥
पर जनकनन्दिनी हा ' न कुटी पर पाई।
धुव धर्म धुरन्धर वीर, अनिष्ट सँहारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(३३)

अति व्याकुल मानुज राम, विरह के मारे ।
सब ओर फिरे सब ठौर, अधीर पुकारे ॥
गिरि, गह्वर, कानन, कुंज, कछार निहारे ।
पर मिला न सिय का खोज, खोज कर हारे ॥
इस भाँति वियोग-समुद्र, सराग मझारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३४)

कढ गई किधर को लाँघ, धनुष की रेखा ।
इस भाँति किया अनुराग, पसार परेखा ॥
मग में फिर घायल-अङ्ग, गृद्ध-पति देखा ।
मर गया सुना कर सीय, हरण का लेखा ॥
उपकार करो कर कोटि, उपाय उदारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३५)

सुन रावण की करतूति, जटायु जलाया ।
निरखे वन, मार कबन्ध, वसन्त न भाया ॥
फिर शवरी के फल खाय, महेश मनाया ।
टिक पम्पापुर पर ऋष्यमूक पुनि पाया ॥
कर पौरुष मानव-धर्म, स्वरूप निखारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१६)

रघुनाथ-बदन को देख, कपीश घबराये।
समझे विधि क्या भट बालि प्रबल के भाये ॥
बन विप्र मिले हनुमान, पीठ पर लाये।
नर बानर-पति ने पूज सुमित्र बनाये ॥
कर मेल पियो इस भाँति प्रेम-रस प्यारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥

(१७)

रघुनायक ने निज-वृत्त समस्त बताया।
सुनकर हरीश का हाल घना दुख पाया ॥
हाय समझ बन्धु से बन्धु, समर लड़ाया।
प्रण बालि-निधन का ठोस ठसक से ठाना ॥
दृढ़ टेक टिका कर सत्य बचन उचारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥

(१८)

शर मार मही पर साल ताड़ तरु डाले।
फिर कहा विजय सुग्रीव बालि पर पाले ॥
ललकार चले हरि बन्धु कृपाण निकाले।
छुप रहे विटप की ओट राम रखवाले ॥
उसको कपिय परताप न जाँस मठारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो ॥

(३६)

समझे जब राम, सुकण्ठ, समर में हारा।
तब तुरत बालि बलवान, मार शर मारा॥
फिर अङ्गद को अपनाय, मना कर तारा।
कर दिया सखा कपि-राज, मिटा दुख सारा॥
दरसो अति गूढ़ महत्त्व, प्रमाण-पिटारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४०)

अभिषेक हुआ सुख-साज, समङ्गल साजे।
अभिनन्दन-सूचक शख, ढोल, ढप, बाजे॥
उमगी बरसात खगोल, घेर घन गाजे।
पर्वत पर विरही राम, सबन्धु विराजे॥
तज कपट सुमित्रादर्श, बनो सब यारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४१)

सुख रहित राम ने गीत, विरह के गाये।
बरसात गई दिन शुद्ध, शरद के आये॥
कपि-नायक ने भट, कीश, भालु बुलवाये।
सिय की सुधि को सब, ओर बरूथ पठाये॥
करिये प्रिय प्रत्युपकार, सुचरितागारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४२)

रघुपति ने सिय के चिन्ह विशेष बताये।
मुँदरी लेकर हनुमान, ससैन सिधाये॥
निरखे परखे सब देश, सिन्धु-तट आये।
पर लगी न कुछ भी थाँग, थके अकुलाये॥
तजिये न समुचित कर्म सुकृत आधारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र वर प्यारो॥

(४३)

सब कहें मरे, प्रभु-काज नहीं कर पाया।
सुन कर उमगा सम्पाति पता बतलाया॥
उछला जलनिधि को लाँघ प्रभञ्जन-जाया।
रिपु-गढ़ में किया प्रवेश सूक्ष्म कर काया॥
फल मान असम्भव का न, प्रतीति पसारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र वर प्यारो॥

(४४)

सिय का सन्ताप घटाय दूर कर शङ्का।
कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय विजय का डंका॥
बँध गया छुटा युत रोष जला कर लङ्का।
फिर दिया शिरोमणि पाय वीर-वर बंका॥
कर स्वामि-काज इस भाँति सुयश विस्तारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र मित्र वर प्यारो॥

(४५)

कर काज मिला हनुमान, भालु-कपि ऊले।
पहुँचे सुकण्ठ पुर पेड़, पेड पर झूले॥
प्रभु को सब हाल सुनाय, खाय फल फूले।
मणि जनक सुता की देख, राम सुधि भूले॥
कर विनय प्रेम-प्रासाद, विनीत बुहारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४६)

रघुवर ने सिय की थाँग, सुनिश्चित पाई।
करदी रिपु-गढ की ओर, तुरन्त चढाई॥
कपि-भालु-चमू प्रभु-साथ, असख्य सिधाई।
अविराम चली भट-भीड़, सिन्धु-तट आई॥
अनघा-धन को कर यत्न, अनेक उबारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४७)

हठ पकड़ रहा लङ्केश, सुमत्र न माना।
चल दिया विभीषण बन्धु, काल-वश जाना॥
समझा रघुपति के पास, पुनीत ठिकाना।
मिल गया कटक में दास, कहाय विराना॥
बस यों सिर से भय-भार, न भीरु उतारो।
पढ राम चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५१)

भिड़ गये भालु-कपि-वृन्द, वीर रिपु घाती ।
अटके रजनीचर, चोर, बधिक, उत्पाती ॥
छिप गया छेद घननाद, लखन की छाती ।
झट ले पहुँचे प्रभु-पास, सुदक्ष सँगाती ॥
अति कष्ट पड़े पर धीर, न हिम्मत हारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५२)

बिन चेत अनुज को देख, राम घबराये ।
हनुमान द्रोण गिरि जाय, महौषधि लाये ॥
कर शीघ्र शल्य प्रतिकार, सुषेन सिधाये ।
उठ बैठे लखन, सशोक, समस्त सिहाये ॥
बन पौरुष-पंकज-भृङ्ग, सुजन गुंजारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५३)

उठ कुम्भकर्ण रण-धीर, अडा मतवाला ।
समझे कपि-भालु सजीव, महीधर काला ॥
रघुनायक ने इषु मार, व्यग्र कर डाला ।
तन खण्ड खण्ड कर प्राण, प्रपञ्च निकाला ॥
प्रतिभट-पिशाच के अंग, अवश्य विदारो ।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो

(५४)

मचगया घना घमसान हुआ अँधियारा।
मर कटें कटक में युद्ध, प्रचण्ड पसारा॥
तड़पें तन तमकें तोष, रुधिर की धारा।
घननाद अभय सौमित्रि सुभट ने मारा॥
यति वीर महा व्रत शील, विपत्ति विदारो।
यह राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५५)

रावण ने घर सेन समेत कुटुम्ब कटाया।
अब जनक-सुता का चोर, समर में आया॥
रच-रच माया छल-दर्प सदम्भ दिखाया।
पर बचा न रावण राम-विजय मे आया॥
खल-दल को मार-मिटाय भू-भार उतारो।
यह राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(५६)

कर सकल हेम-प्रासाद नगर के रीते।
कट मरे निशाचर वीर, भालु, कपि जीते॥
रघुवर बोले दिन मास विरह के बीते।
अबतो मिल मंगल साज सुयशता लीते॥
सिखलो वनिता पर प्रेम सुरुचि संचारो।
यह राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

(५७)

विधवा दल का परिताप, विलाप मिटाया।
अवनीश विभीषण वश, वरिष्ठ बनाया॥
सिय से रघुनाथ सबन्धु, मिले सुख पाया।
दिन फिरे अवध के ध्यान, भरत का आया॥
निज जन्म-भूमि पर प्रेम, अवश्य प्रसारो।
पद राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५८)

फिर पुष्पक पै कपि भालु, प्रधान चढ़ाये।
चढ लखन, जानकी, राम, चले घर आये॥
गुरु, मात, बन्धु, प्रिय, दास, प्रजा-जन पाये।
सब ने मिल-भेंट समोद, शम्भु गुण गाये॥
बिछुड़ो ! कर मेल-मिलाप, प्रवास विसारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५९)

सिय, राम, भरत, सौमित्रि, मिले अनुरागे।
पट, भूषण सुन्दर धार, वन्य-व्रत त्यागे॥
उमगे सुख, भोग-विलास, विघ्न, भय भागे।
अपनाय अभ्युदय भव्य, राज-गुण जागे॥
चमकी अब छार छुड़ाय, ज्वलित अङ्गारो।
पढ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

अ० र० १२

(६०)

अभिमन्त्रित मंगल-मूल साज सब साजे।
प्रभुतासन पै रघुनाथ, सशक्ति बिराजे॥
घर घर गावन, वादित्र मनोहर बाजे।
सुनते ही जय जयकार, राम-गाज गाजे॥
धनिहे शंकर इस भाँति धर्म-अवतारो।
पद राम-चरित्र पवित्र मित्र उर धारो॥

वासन्त-विकास

(दोहा)

छूटे शीत, निदाघ को जिसकी छवि के छोर।
फूल रहा देखो सखा वस बसन्त की ओर॥

(गीत)

छवि ऋतु-राज की रे,
अपनी ओर निहार, निहारो॥
घरती हैं घड़ियाँ रजनी की बढ़ता है दिन-मान
सकुचेगी इस भाँति अविद्या विकसेगा गुरु ज्ञान।
छ ऋ० की अ ओर नि निहारो॥
कर पतझड़ चढ़ी पेड़ों पै, हरियाली भरपूर
यों अवनति को उन्नति हारा, अब तो कर दी दूर।
छ ऋ की अ ओर नि निहारो॥

छदन बेलि, वृक्षों पर छाये, रहे अपर्ण करील,
मन्द सुअवसर पाते तोभी, बने न वैभव-शील।
छ० ऋ० की० अ० ओर नि० निहारो॥
उलहे गुल्म, लता, तरु सारे, अंकुर कोमल-काय,
जैसे न्याय परायण नृप की, प्रजा बढ़े सुख पाय।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
हार हरे कर दिये वसन्ती, सरसों ने सब खेत,
मानो सुमति मिली सम्पति से, धर्म, सुकर्म समेत।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो।
मधुर रसीले फल देने को, बौरे सघन रसाल,
जैसे सकल सुलक्षण, धारें, होनहार कुल-पाल।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
बिगड़े फुलबुन्दे कदम्ब के, कलियानी कचनार,
बन बैठे धनहीन धनी यों, निर्धन कमलाधार।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
धौरे सुमन सुगन्धित धारें, सदल सेवती, सेव,
मानो शुद्ध सुयश दरसाते, हिलमिल देवी, देव।
छ० ऋ०।की० अ० ओ० नि० निहारो॥
गेंदा खिले कुसुम केसरिया, पाटल पुष्प अनूप,
किम्वा सहित समाज विराजे, बुध मन्त्री, गुरु भूप।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥

फूल रहे सर में रस वर्षें उपकारी अरविन्द,
दान पात गुण-गण गाते हैं, पावनकुन्द-मिलिन्द।
ब्र भ की॰ म मो मि॰ निहारो ॥
फूल मसि मिश्रित अरुणारे, किंशुक सौरभ हीन,
विचरें यथा असाधु रँगीले ज्ञानशून्य धन-पीन।
ब्र भ की म॰ मो मि॰ निहारो ॥
अरुण फूल फूले सेमर के प्रकट कोश गम्भीर,
क्या लोहित मणि की कुलियों में माँगरहे मधु वीर।
ब्र भ की म मो नि निहारो ॥
षट्-पद गण सत्यानाशी के विकसे कण्टक चार,
किम्वा विराग वश कटु भाषी बालक करें विहार।
ब्र भ की म मो नि निहारो ॥
सुमन, मंजरी बरसाते हैं, बन बीहड़ आराम,
क्या रार मार-मार रसिकों से, मटक रहा है काम।
ब्र भ की म मो मि निहारो ॥
पुष्प-पराग-सुगन्धि उड़ाता, शीतल मन्द समीर,
या सब को सुख पहुँचाता है, धर्म-धुरन्धर वीर।
ब्र भ की म मो नि निहारो ॥
कोकिल कूँजें मधुकर गूँजें बोलें विविध विहंग,
क्या मिल रहे साम-गायनसे मुरली, वेणु, मृदंग।
ब्र भ की म मो मि निहारो ॥

त्याग विरोध मिले समता से, सरदी और निदाघ,
वैर विसार तपोवन में ज्यों, साथ रहें मृग-बाघ।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
रसिक-शत्रु वासन्ती विधि का, करते हैं अपमान,
ज्यों रस-भाव भरी कविता को, सुनते नहीं अजान।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
भर देता है भारत भर में, मधु आनन्द, उमङ्ग,
भङ्ग पिला कर शकर का भी, कर डाला व्रत-भङ्ग।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

देवचतुष्टय

(दोहा)

इष्ट देव ससार का, शङ्कर जगदाधार।
शिष्ट देव माता, पिता, गुरु, अभ्यागत चार ॥

(गीत)

वैदिक विद्वान बताते हैं,
साकार देवता चार ॥
माता ने जन कर पाला है, कौन पिता-सा रखवाला है,
सेवक, सेवा कर दोनों की, सविनय वारम्बार।
वै० वि० व० सा० देवता चार ॥

ब्रह्म काल में गुरु से आगे, भागे छोड़ बिछैया,
छुट्टी पाकर शौच क्रिया से, न्हा-धो चुके न्हवैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥
बाल ब्रह्मचारी व्रत-धारी, बैठे डाल चटैया,
सन्ध्या, ध्यान, होम करते हैं, पाँचो याग करैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥
कर व्यायाम चले सध्या को, बारे वेदपढ़ैया,
हे शङ्कर! आलस्य न, डोवे धर्म-कर्म की नैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥

वैदिक विवाह

(दोहा)

धार तेज तारुण्य का, एक नारि नर एक।
दो दो दम्पति प्रेम से, प्रगटें ग्रही अनेक ॥

(गीत)

उमगी महिमा उत्कर्ष की,
सुख मूल विवाह किया है।
देखो नामी घर का वर है, विज्ञ ब्रह्मचारी सुन्दर है,
आयु पचीसी से ऊपर है, दुलहिन षोडश वर्ष की।
शुभ योग मिलाय लिया है।
सुख-मूल विवाह किया है ॥

मण्डप के भीतर बैठे हैं सप्तपदी ले कर बैठे हैं,
चारों भाँवर भर बैठे हैं पाय परम निधि हर्ष की।
हिल-मिल पीयूष पिया है।
सुख-मूल विवाह किया है॥
बैठे सभ्य-सुबोध बराती पूर्ण प्रेम पसार बराती
नारि सीठने एक न गाती समुचित भारतवर्ष की।
विधि का उपदेश लिया है।
सुख-मूल विवाह किया है॥
रण्डी भाँड कुसंग नहीं है आमिष शराब भंग नहीं है
गुण्डों का हुरदंग नहीं है, कुमति अधम-आमर्ष की।
सब शंकर कर्म किया है।
सुख-मूल विवाह किया है॥

प्रचण्ड प्रथा पचवर्गी
(स्मरणात्मक मिश्रितराग)

(१)

दया का दान देने को जिन्होंने जन्म धारे हैं।
न ब्रह्मानन्द से न्यारे, न विद्या के विसारे हैं॥
जिन्होंने योग से सारे, खरे-खोटे निहारे हैं।
प्रतापी देश के प्यारे विदेशों के दुलारे हैं॥
हमें भवधार धारा से भला वे क्यों न तारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे॥

(२)

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खोदेंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे॥
प्रजा के और राजा के, गुणों की गाँठ जोड़ेंगे।
भिड़ेंगे भेद का भाँडा, धड़ाका मार फोड़ेंगे॥
लड़ेंगे लोभ-लीला के, लुटेरों से न हारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(३)

खबीले जाति के मारे, प्रबन्धों को टटोलेंगे।
जनों को सत्य-सत्ता की, तुला से ठीक तोलेंगे॥
बनेंगे न्याय के नेगी, खलों की पोल खोलेंगे।
करेंगे प्रेम की पूजा, रसीले बोल बोलेंगे॥
गपोड़े पागलों के-से, समाजों में न मारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(४)

बनेगी सभ्यता-देवी, बड़ाई देव-दूतों की।
हमारे मेल की मस्ती, मिटावेगी न ऊतों की॥
करेंगे साहसी सेवा, सदाचारी सपूतों की।
घरों में तामसी पूजा, न होगी प्रेत-भूतों की॥
मतों के मान मारेंगे, कुपन्थों को बिसारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(५)

भरीले अन्धविश्वासी नमूनों को नकारेंगे।
अनूठी कूपमंडूकता की अंगोपाई सुधारेंगे॥
मरों के साथ जीवों के झूठे नाते सुधारेंगे।
तरेंगे ज्ञान-गंगा में अविद्या को सुधारेंगे॥
सुधी सद्धर्म धारेंगे सुकर्मों को सँवारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(६)

धरेंगे ध्यान मेधा का पढ़ेंगे वेद चारों को।
प्रमाणों की कसौटी पै कसेंगे सद्विचारों को॥
मिटेंगे लोक-लीला के बड़े छोटे विकारों को।
महा विज्ञान सन्ध्या का दिखावेंगे सुधारों को॥
सुधी सर्वज्ञ-सिद्धों पै सदा सर्वस्व वारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे॥

(७)

सुशिक्षा बालिकाओं को, सिखावेंगे पढ़ावेंगे।
न कोरी कर्मशास्त्रों को वृथा सीमा गढ़ावेंगे॥
प्रतीक्षा का प्रतिज्ञा के महाव्रत पै चढ़ावेंगे।
सती के सत्य की शोभा प्रशंसा से बढ़ावेंगे॥
सुमार्गप्रेमियों को यों दया-दानी सुधारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

(८)

बढेगा मान विज्ञानी, सुवक्ता, ग्रन्थकारों का।
घटेगा ढोंग पाखण्डी, दुराचारी, लबारों का॥
पता देवज्ञ, देवों में, न पावेगा भरारों का।
अजानों की चिकित्सा से, न होगा नाश प्यारों का॥
सुयोगी योग विद्या के, विचारों को प्रचारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(९)

कुचाली चाटुकारों को, न कौडी भी ठगावेंगे।
पराई नारियों से जी, न जीतेजी लगावेंगे॥
सहेटों में सुलाने को, न रण्डा को जगावेंगे।
अनाचारी, असभ्यों के, कुभोगों को भगावेंगे॥
पुरानी नायकाजी को, न ग्रन्थों में निहारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१०)

करेंगे प्यार जीवों पै न गौओं को कटावेंगे।
बसा कगाल दीनों की, न चिन्ता को चटावेंगे॥
महामारी-प्रचण्डी की, बढ़ी सीमा घटावेंगे।
कुचाली काल की सारी, कुचालों को हटावेंगे॥
पड़े दुर्दैव घाती की, न घातों को सहारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(११)

फलेगी प्राप्यता खेती किसानों के कुमारों की।
बढ़ेगी सम्पदा पूँजी खरे दूकानदारों की॥
बढ़ावेगी कलाकारी कमाई शिल्पकारों की।
बड़ाई लोक में होगी, प्रतापी होनहारों की॥
करेंगे नाम कामों की प्रथा प्यारी प्रसारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे॥

(१२)

नशीले मस्त गुण्डों के मजालों को उजाड़ेंगे।
ठगों की पेट-पूजा के बसे जो ढंग डाले हैं॥
रहेंगे दूर दुष्टों से कुरीतों को हटावेंगे।
कलों का कोष खोलेंगे पिशाचों को पछाड़ेंगे॥
मिटेगी मोह-माया के प्रपंचों को पछाड़ेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे॥

(१३)

सुधी श्रद्धा-सुधा सारे, सुकर्मों को सिखावेंगे।
करेंगे नाश मिथ्या का सचाई को सिखावेंगे॥
सिखापी सब-मावा में निरक्षरों को सिखावेंगे।
न गप्पी गर्व-गाथा से, पहाड़ों को हिलावेंगे॥
'मिलो भाई' सँगाथी यों बहुतों को पुकारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे सुधारों को सुधारेंगे।

(१४)

विवेकी ब्रह्म-विद्या की, महत्ता को बखानेंगे।
बड़ा कूटस्थ अत्ता में, किसी की भी न मानेंगे॥
प्रमादी, देश विद्रोही, जड़ों को नीच जानेंगे॥
ठगों के जाल भोलों के, फँसाने को न तानेंगे॥
कभी पाखण्ड-पापी के, न पैरों को पखारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१५)

बड़ों के मन्त्र मानेंगे, प्रसगों को न भूलेंगे।
कहा क्या ऊँच ऊँचों की, ऊँचाई को न छूलेंगे॥
बढ़ेंगे प्रेम के पौधे, दया के फूल फूलेंगे।
भरे आनन्द से चारों, फलों के भाड़ भूलेंगे॥
सभों को शंकरानन्दी, अनिष्टों से उबारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

भद्र भावार्थ

(दोहा)

गुरु देवों का दास है, असुरों का उपहास।
उपदेशों का वास है, भणित भद्र उल्लास॥

भूतकाल की कथा

(मन्दाक्रान्ता वृत्त)

स्वामीजी की, जब न सुखदा, घोषणा हो रही थी ।
मिथ्या माया, कपट छल की, वेदना बो रही थी ॥
भारी बोझे, अमित भय के, भीरुता ढोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥

मेधा-देवी, विकल जब थी, भारती रोरहीथी ।
गोरक्षा को, वधिक बल की, क्रूरता खोरहीथी ॥
कंगाली के, मलिन मुख को, श्री नहीं धोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥

सन्मुखोद्गार

(दोहा)

ऊँची पदवी से गिरा, गौरव रहा न सङ्ग ।
प्यारे भारतवर्ष का, हाय ! हुआ रस भग ॥

(त्रोटकात्मक मिलिन्दपाद)

प्रभु शकर ! तू यदि शकर है ।
फिर क्यों विपरीत भयकर है ॥
करतार उदार सुधार इसे ।
कर प्यार निहार न मार इसे ॥

मृगराज कहाय कुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(२)

घरखीरा, घनरा, अनरा रहा।
अनुकूल सदा अभिमरा रहा॥
सबसे बढ़िया पढ़िया कब था।
इस भाँति बड़ा जब था तब था॥
अब वो यह नङ्गमङ्ग हुआ?
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(३)

जिसने सुविचार विकास किया।
रच ग्रन्थ-समूह प्रकाश किया॥
कवि नायक पण्डित-राज बना।
वह आज अशिक्षित भाग्य बना॥
जिस पथ [विपथ-विरुद्ध हुआ?
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(४)

अपनों में कहीं वह देश मिला।
इस का न जिसे उपदेश मिला॥
सब गौरव के गुरु अस्त हुए।
गुरु के गुरु शिष्य समस्त हुए॥
कितना प्रतिकूल प्रसंग हुआ?
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(५)

जिसके जन-रक्षक शस्त्र रहे ।
उसके कर हाय ! निरस्त्र रहे ॥
रण-जीत शरासन टूट गया ।
इपु-वर्ग यशोधर छूट गया ॥
रिपु-रक्त-निमग्न निपङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(६)

बिगड़ी गति वैदिक धर्म विना ।
सुख हीन हुआ शुभ कर्म विना ॥
हठ ने जडधी अविकाश किया ।
फिर आलस ने वल नाश किया ॥
हरिचन्दन हाय ! पतङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(७)

मिल मोह-महातम छाय रहा ।
लग लोभ कुचाल चलाय रहा ॥
मद मन्द कुदृश्य दिखाय रहा ।
कटु भाषण क्रोध सिखाय रहा ॥
नय-नाशक नीच अनङ्ग हुआ ।
वस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(८)

घनघोर कर्मगत्त गाज रहा ।
भरपूर विरोध विराज रहा ॥
घर घर दरिद्र दहाड़ रहा ।
उर शोक-भयासुर फाड़ रहा ॥
रिपु-रूप कराल कुसङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(९)

मधु पान करें न पदम पद को ।
अपनाय रहा रस-भयकर को ॥
मग भूल कलङ्क-निशीथिनी के ।
अनुराग रँगे गणिका-गण के ॥
दृग-दीपक देख पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१)

बुध-भाषण को अपलाप सुने ।
पर शब्द समूह सुनाय सुने ॥
जिसका गुरु मान मनाय रहा ।
उसकी पद छाप बनाय रहा ॥
पर श्यामल से न सुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(११)

अनरीति कटा-कट काट रही ।
पशु-पद्धति शोणित चाट रही ॥
पल खाय अपव्यय खेल रहा ।
ऋण-चूचड़ खाल उचेल रहा ॥
ससके सब घायल अङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१२)

बिन शक्ति समृद्धि सुधा न रही ।
अधिकार गया वसुधा न रही ॥
बल-साहस हीन हताश हुआ ।
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ ॥
रजनीश प्रताप पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१३)

चिर सञ्चित वैभव नष्ट हुआ ।
उर-दाहक दारुण कष्ट हुआ ॥
सुख वास न भोग-विलास नहीं ।
उपवास करे धन पास नहीं ॥
बिगड़ा सब ढङ्ग कुढङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१४)

मन और बने व्यवहार नहीं।
फिर शिल्प-कला पर प्यार नहीं॥
कुछ दीन किसान कमाय रहे।
हलका-हलका फल पाय रहे॥
उनको कर-भार भुजङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१५)

कस पट अकिञ्चन सोय रहे।
बिन भोजन बालक रोय रहे॥
विपदा तक भी न रहे तन पै।
धिक! धूलि पड़े इस जीवन पै॥
अवलोक अमङ्गल दङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१६)

मत-भेद भयानक पाप रहा।
बिन प्रेम न मेल-मिलाप रहा॥
अभिमान अधोमुख ठेल रहा।
अधमाधम ढोंग [illegible] रहा॥
सुख जीवन का मग तङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१७)

मत-पन्थ असख्य असार बने ।
गुरु लोलुप, लण्ठ, लवार बने ॥
शठ सिद्ध कुधी कवि-राज बने ।
अनमेल अनेक समाज बने ॥
इस हुल्लड़ का हुरदङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१८)

सरके विधि, वेद रसातल को ।
सिर धार अनर्थ-महाचल को ॥
अब दर्शन-रूप न दर्शन हैं ।
नव-तत्र प्रमाद-निदर्शन हैं ॥
बकवाद विचित्र पडङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१९)

अब सिद्ध मनोरथ-सिद्ध नहीं ।
मुनि मुक्त प्रवीण प्रसिद्ध नहीं ॥
अविकल्प अनुष्ठित योग नहीं ।
विधि मूलक मत्र-प्रयोग नहीं ॥
फल संयम का ,शश-शृ ग हुआ ।
बस भारत का रस भग हुआ ॥

(२०)

अवधेश धनुर्धर राम नहीं ।
व्रज-नायक श्रीघनश्याम नहीं ॥
अब कौन पुकार सुने हमकी ।
परमाकुल गैल गहे किसकी ॥
तड़पे मृग-दीन-तरंग हुआ ।
बस भारत का रस भंग हुआ ॥

हमारा अधःपतन

(दोहा)

शंकर से प्यारे रहे वैदिक धर्म बिसार ।
डोली-डोला हम गिरे पाप-प्रभाव पसार ॥

([illegible] सिद्धिपद)

(१)

प्रभु शंकर मोह शोक-हारी घन रुद्र त्रिशूल शक्ति-धारी ।
कुछ देख दयालु ! न्यायकारी गत गौरव दुर्दशा हमारी ॥
उपताप समीप आ रहे हैं ।
घबड़ाते हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२)

जिसको सब देश जानते थे अपना सिरमौर मानते थे ।
जिसने जग बीच नाम पाया अगुआ सब जगत का कहाया ॥
उस भारत को लजा रहे हैं ।
उससे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(३)

पहला युग पुण्य-कर्म का था, सुविचार प्रचार धर्म का था।
जिस के यश की प्रतीक पाई, हरिचन्द नरेश की सचाई॥
अब सूम ठगी मिटा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जारहे हैं॥

(४)

उपजा युग दूसरा प्रतापी, प्रकटे व्रतशील और पापी।
जिस की सुप्रसिद्ध रीति जानी, समझी रघुनाथ की कहानी॥
अब रावण जी जला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(५)

कर द्वापर कृष्ण की बड़ाई, रच भेद भिड़ा गया लड़ाई।
अपना बल आप ही घटाया, छल का फल सर्वनाश पाया॥
अबलों कुल मार खा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(६)

जब से कलिकाल-कोप आया, तब से भरपूर पाप छाया।
कुल-कण्टक, प्राण ले रहे हैं, ठग दारुण दुःख दे रहे हैं॥
जड, कर्म भले भुला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(७)

मुनिराज मिलें न सिद्ध-योगी, धननीश रहे न राज-भोगी ।
सब उद्यम खो गये हमारे, शुभ साधन सो गये हमारे ॥
बल खोकर बुरे किया रहे हैं ।
घटते हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(८)

सुविचार, विवेक, धर्म-निष्ठा, मद-मारजन, प्रेम की प्रतिष्ठा ।
बल, वित्त, सुधार, सत्य-सत्ता सब को विष दे मरी महत्ता ॥
मति-हीन, हँसी करा रहे हैं ।
घटते हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(९)

तज वैदिक धर्म-धीरता को अकड़ें मठ विश्व-वीरता को ।
निधि निर्बल न्याय की न भावे सुविधा न सुधार की सुहावे ॥
अनभिज्ञ सुधी बना रहे हैं ।
घटते हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१)

अनमोल धर्मधन मन्द खोये बस मायिक भेद भी बिगोये ।
इतिहास मिलें नहीं पुराने अनुकूल नवीन तंत्र माने ॥
हठवाद हठी चला रहे हैं ।
घटते हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(११)

व्रतशील सुबोध हैं न शर्म्मा, रण रोप लड़ें न वीर वर्म्मा ।
धन-राशि न गुप्त गाढ़ते हैं, गुरु भाव न दास फाड़ते हैं ॥
चतुराश्रम ढोंग ढा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१२)

निगमागम ज्ञान-बीन छोड़े, उपदेश बना दिये गपोड़े ।
अब जो विधि जाति में भरी है, उस की जड़ श्री बिरादरी है ॥
यश उद्धत पच पा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१३)

भ्रम भेद भरी पवित्रता है, छल से भरपूर मित्रता है ।
मन गेह घने घमण्ड का है, डर केवल राज दण्ड का है ॥
मत-पन्थ नये नचा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१४)

मत-भेद पसार फूट फैली, बिन मेल रही न एक शैली ।
सुख-भोग भगाय रोग जागे, पकड़े अघ-ओघ ने अभागे ॥
दिन सकट के बिता रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१६)

कवि-राज समाज में न बोलें, धनहीन सुधी उदास डोलें ।
गुण-ग्राहक कल्पवृक्ष सूखे, भटकें भट, शिल्पकार भूखे ॥
शठ आदर से अघा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२०)

समझे तन-भार भूषणों को, दमके दमकाय दूषणों को ।
कविता-रस भाव तोल त्यागे, झलकाय कहीं न और आगे ॥
गढ तुक्कड गीत गा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२१)

विरले ध्रुव धर्म धारते हैं, शुभ कर्म नहीं बिसारते हैं ।
तरसें वह वीर रोटियों को, चिथड़े न मिलें लँगोटियों को ॥
कुलबोर प्रथा पुजा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२२)

बलहीन अबोध बाल-बच्चे, करतूत विचार के न सच्चे ।
डरपोक सुधार क्या करेंगे, लघु जीवन भोगते मरेंगे ॥
घटिया कुनबे बढ़ा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२७)

ठमके सब ठौर राज-भाषा, थिरके न थकी समाज-भाषा।
लिपि बैल-मुतान-सी खरी है, पर पोच प्रशस्त नागरी है॥
मिल मिस्टर यों मिटा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२८)

लिपि लाल-प्रिया महाजनी है, जिस की दर देश में घनी है।
प्रिय पाठक, वर्ण दो बना लो, पढ चून, चुना, चुनी, चना लो॥
मुडिया मति को मुडा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे है॥

(२९)

ग्रह-योग दबोच डाँटते हैं, जड तीरथ मुक्ति बाँटते हैं।
बलि, पिण्ड न भूत-प्रेत छोड़ें, सुर सार सुभक्ति का निचोडें॥
डर कल्पित भी डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३०)

अति उन्नत राज-कर्मचारी, जिन के कर भाग है हमारी।
भरपूर पगार पा रहे हैं, फिर भी कुछ घूँस खा रहे हैं॥
पद का मद यों जता रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(११)

धमकें धरमार के धड़ाके अभियोग चला रहे चलाके।
यदि वेतस न्याय का न देगा किस को फिर कौन बीत देगा॥
सुन कोर्ट-कथा सुना रहे हैं।
चकरे हम हाय! जा रहे हैं॥

(१२)

मृदु मालिस काम न रहे हैं कटु मस्पुट धाम दे रहे हैं।
ठगियापन से न छूटते हैं, पर पुण्य कपार फूटते हैं॥
करुणामृत यों बहा रहे हैं।
चकरे हम हाय! जा रहे हैं॥

(१३)

विपदा रुचि राख रो रही है कुलटा कुल-कानि खो रही है।
कर कौतुक गर्भ धारती है, तन बालक हाय! मारती है॥
शिव धर्म-ध्वजा उड़ा रहे हैं।
चकरे हम हाय! जा रहे हैं॥

(१४)

पशु पोष पस्त घटा रहे हैं, अब गोकुल को घटा रहे हैं।
दधि माखन दूध घी बिसारे ब्रज-राज कहाँ गये हमारे॥
बिन दूध दुखी दुखा रहे हैं।
चकरे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३५)

जल का कर, बीज, ब्याज पोता, भुगताय सकें न भूमि जोता।
खलियान अनेक डालते हैं, पर, केवल पेट पालते हैं॥
बुड्ढान किसान हा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३६)

सब देश कबाड़ दे रहे हैं, धन और अनाज ले रहे हैं।
क्षति का लिखते न लोग लेखा, परखे बिन क्या करें परेखा॥
सुख-साज सजे मजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३७)

धरणीश, धनी, समृद्धिशाली, अलमस्त पड़े समस्त ठाली।
जड-जंगम जीव नाम के हैं, विषयी न विशेष काम के हैं॥
गढ गौरव का खसा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३८)

कुल-कटक दास काम के हैं, नर कायर वीर वाम के हैं।
जब जम्बुक-यूथ से डरेंगे, तब सिंह कहाय क्या करेंगे॥
डरपोक डटे डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३९)

भरती धन धाम दे चुके हैं, भरपूर चरित्र खो चुके हैं।
कब मज़हब से मिलाप होगा कब दूर प्रमादि-पाप होगा॥

अब तो कुविचार ला रहे हैं।
घटते हम हाय! जा रहे हैं॥

(४)

भर पेट कहा कुनीति खाना परतंत्र समूह को सताना।
इस को कुल-धर्म जानते हैं, क्या उन्नति का बखानते हैं॥

धन धींग-धनी कमा रहे हैं।
घटते हम हाय! जा रहे हैं॥

(४१)

सुनलो! सब त्याग भीरु लोगो सुख-भोग सदा समोद मांगो।
पकड़ा विधि मान-मस्त ऐसी किस की अमरीति रीति कैसी॥

इस भाँति मज़ा मिला रहे हैं।
घटते हम हाय! जा रहे हैं॥

(४२)

गरिमा जयचन्द ने कमाई महिमा महमूद की बढ़ाई।
कलिमा कुरआन का पढ़ाया, कुनबा इसलाम मे बढ़ाया॥

शठ सिक्ख, सिखा घटा रहे हैं।
घटते हम हाय! जा रहे हैं॥

(४३)

कुल-धर्म कुलीन खो चुके हैं, मक़बूल-मुराद हो चुके हैं।
भ्रम-भाजन भक्त भूल के हैं, न मुरीद खुदा रसूल के हैं॥
इलहाम-नबी लुभा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४४)

गुरु गौर शरीर, शिष्य काले, बन मिश्रित मुक्ति के मसाले।
कर प्यार हमें सुधारते हैं, प्रभु गॉड-कुमार तारते हैं॥
सर नेटिव त्राण पा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४५)

चढ़ प्लेग-पिशाच ने पछाड़े, घर दुष्ट-दुकाल ने उजाड़े।
पुर पत्तन, देख देख रीते, मरने पर हैं प्रसन्न जीते॥
कुल कष्ट कड़े उठा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४६)

सब का अब सर्वमेध होगा, विधि का न कभी निषेध होगा।
बिगड़े न बनी, बनी सराहें, परतन्त्र, स्वतन्त्रता न चाहें॥
ढप ढाड़स के बजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४७)

लघु, लोलुप, लालची बने हैं सब दुर्गति-गाड़ में पड़े हैं।
विधि ! क्या अब और भी गिरेंगे अथवा वे दिन गये फिरेंगे ॥
सुख चैन जिन्हें भुला रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(४८)

कुछ लोग भला विचारते हैं, शुभ जाति-सभा सुधारते हैं।
मञ्चों पर गर्म-नर्म बातें गरजें गप मार-मार लातें ॥
घर फूँक कुआ सुखा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(४९)

अनुभूत अनन्त भाव जाने, कविता जिस बुद्धि ने बखाने।
यदि सिद्ध सरस्वती रहेगी तब तो कुछ और भी कहेगी ॥
भ्रम भारत को भ्रमा रहा है।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

अवनति से उन्नति

(दोहा)

गिर जाता है गर्त में जब था उन्नत डेरा।
ऊँचा करते हैं उसे तब ऊँच बसेरा ॥

सूर्य-ग्रहण पर अन्योक्ति

(दोहा)

रोके तेज दिनेश का, रे शशि, लघुता लाद।
जैसे ढके महेश को, अन्ध अनीश्वरवाद॥

(रचिरात्मक राजगीत)

रे रजनीश ! निरङ्कुश तू ने, दिननायक का ग्रास किया।
नेक न धूप रही धरणी पै, घोर तिमिर ने वास किया॥
जिस को पाय चमकता था तू, अधम उसी को रोक रहा।
धिक ! पापिष्ट कृतघ्न कलङ्की, तेज त्याग तम पास किया॥
मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा, छिटकी छवि तारागण की।
अपने आप जाति में अपना, क्यों इतना उपहास किया॥
जुगुनू जाग उठे जंगल में, दिये नगर में जलवाये।
मूँद महा महिमा महान की, अणु का तुच्छ विकास किया॥
मङ्गल मान निशाचर सारे, चरते और विचरते हैं।
दिन को रूप दिया रजनी का, देव-समाज उदास किया॥
उष्ण प्रभा बिन वन पुष्पों से, सार सुगन्ध न कढते हैं।
रोक चाल नैसर्गिक विधि की, दिव्य हवन का ह्रास किया॥
चकित चकोर चाह के चेरे, चिनगी चुगते फिरते हैं।
मुख, पग, पख जलाने वाला, ज्वलित चन्द्रिकाभास किया॥
श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे, सकुचे कंज, कुमोद खिले।
जोड़-तोड़ चकई-चकवों के, खण्डित प्रेम-विलास किया॥

दिन में चुगने वाली चिड़ियाँ, हा ! अब कहीं न बचती हैं
सब के उत्तम उगने वाला सिर्फ तामसिक त्रास किया
नाम सुधाकर है पर तेरी अधुना विष बरसाती है
विरहानल को भड़काने का अति निन्दित अभ्यास किया।
बढ़-बढ़ कर पूरा होता है घटता-घटता छुपता है
यों उन्नति अवनति के द्वारा पक्ष-भेद प्रतिभास किया।
तेरी भाड़ हटाकर निकली, कोर प्रचण्ड प्रभाकर की
फिर दिन का दिन होजावेगा, हठ ! क्यों वृथा प्रयास किया।।
दिव्य उजाला देकर तुझ को परसों फिर चमकावेगा।
ऐसा उस सविता स्वामी ने मोहन अपना दास किया।।
शंकर के मस्तक पर तेरा अविचल-वास बताते हैं।
पौराणिक पुरुषों ने भ्रम से अटल अन्धविश्वास किया।।

अरण्य-रोदन

(दोहा)

रोते फिरो अरण्य में विपत सुनेगा कौन।
शङ्कर दीनानाथ का ध्यान धरो धर मौन।।

(शिखरिणी छन्द)

अभागे जीते हैं पुरुष बड़भागी मर गये।
मरे भी रोते हैं, घर मगर सूने कर गये।।
प्रतिष्ठा खोने को, पतित हुए हा ! जीवन धरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे।।

(२)

कुचालों ने मारे, मनुज मतवाले कर दिये।
कुपन्थों में मारे, विकट कटु भाषी भर दिये॥
हठीले होने को, हठ न अगुओं की मति हरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(३)

दुराचारी दण्डी, जटिल जड मुण्डे मुनि घने।
प्रमादी पाखण्डी, अबुध-गण गुण्डे गुरु बने॥
अविद्या ढोने को, विषय-रस का रेवड़ चरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(४)

विरोधी राजा के, छल कर प्रजा का धन हरें।
घिनोने पापों से, वधिक नर-घाती कब डरें॥
मलों के धोने को, सुकृत-घन पुण्योदक धरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(५)

क्षुधा हत्यारी ने, उरग-इव नारी-नर डसे।
मसोसे मारी ने, चटपट बिचारे चल बसे॥
सदा के सोने को, अब न दुखियों का दिल मरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(६)

धनी को रो बैठे बिगड़ सुख के साधन गये।
सुधी भी खो बैठे, धन बिन भिखारी बन गये॥
न कौड़ी खोने को कुमति कुटियों में भ्रम भरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

भारत की भूलें

(दोहा)

भूल रहे भूले फिरें भूल भरे परिवार।
भूलों का करत नहीं भूल विस्मर सुधार॥

(कव्वाली कहरवा)

बोलो भाई कैसे होगा
ऐसी भूलों का सुधार।
शुद्ध सच्चिदानन्द एक है शंकर सबका आधार
निर्गुण निराकार, स्वामी को कहें सगुण साकार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
मतवालों ने मान लिया है, जो सब का करतार
वैर-फूट बोगये उसी के रूप भूप अवतार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विरले विज्ञानी करते हैं, वैदिक धर्म प्रचार
मूढ़ मरें मौतों के दुख में पशुधा ठठ-गमार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

ठीक ठिकाना बतलाने के, बन-बन ठेकेदार,
ठगिया औरों को ठगते हैं, जटिल गपोड़े मार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
कल्पित स्रष्टा के सूचक हैं, समझे असदुद्गार,
योंही अपने आप हुआ है, यह समस्त संसार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
भिन्न-भिन्न विश्वास हमारे, भिन्न-भिन्न व्यवहार,
भेद भिन्नता के अपनाये, भिन्न चलन आचार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
सिद्धों के आगम-कानन को, काटें कुमत-कुठार,
समझें सद्ग्रन्थों को जड़-धी, जडता के अनुसार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विद्या के मन्दिर हैं जिनके, गुण धर ज्ञानागार,
होड़ लगाते हैं उनसे भी, गौरव-हीन गमार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विज्ञ ब्रह्मचारी करते हैं, अभिनव आविष्कार,
सुबुध बने बच्चों के बच्चे, उनकी-सी धज धार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
फैली फूट लड़ें आपस में, वैर-विरोध पसार,
कहिये ये कुट्टैल करेंगे, कब किस का उद्धार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

रँग रँग सम्पिति की सेना, पहुँची सागर पार,
रीता हुआ हाय! भारत का, अब अक्षय भण्डार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

जिन के गुरु ज्ञानी जीते थे, प्रभुता पाय अपार,
उन को अपने आपे पै भी, नहीं रहा अधिकार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

सिंह नाम धारी रसिकों ने, फेंक दिये हथियार,
उगलें राग बजें तम्बूरे, तबले, वेणु, सितार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

वीर-धर्म की टेक टिकाई, गलमुच्छे फटकार,
औसर आते ही वन बैठे, केहरि कायर स्यार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

देखें चित्र, चरित्र, बड़ों के, पढ़ें पुकार-पुकार,
तो भी हा! न दुर्दशा अपनी, निरखें आँख उघार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

अधम, आततायी, पाखण्डी, उजबक, ज्वारी, जार,
गौरव, दान, मान पाते हैं, साधु वेष बटमार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

विधि-वल्लभ का वाणी से भी, करें न शठ सत्कार,
नीचों में मिलते, हम ऊँचे पौरुष पर धिक्कार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

मदिरा, ताड़ी, भङ्ग, कसूमा, रङ्ग निचोड, निथार,
पीते वीर, न कण्टक जाने, मादक व्रत की सार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
झुलसे चाँडूबाज, गँजेड़ी, मदकी, चरसी, चार,
झाड़ झाड़ चूमें चिलमों को, अग पजार-पजार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
हुल्लड़, हुरदंगों की मारी, लाज लुकी हिय हार,
कौन कहे गोरी रसियों की, महिमा अपरम्पार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
देखो भाव घटे गोरस का, बढें न घृत के वार,
फिर भी गौओं पर खौओं की, चलती है तलवार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
लाखों पत्तन, ग्राम उजाड़े, घटे घने परिवार,
काल कराल महामारी का, हा! न हुआ प्रतिकार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
फिल्टर वाटर से भी चोखी, सुरसरिता की धार,
गोड़ें उसे गोल गटरों के, नरक-नदी के यार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
राम राम, पालागन, भावे, जय गोपाल, जुहार,
करें सलाम, नमस्ते ही को, समझें वज्र प्रहार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

जिस की कविता के भावों पै रीझें रसिक उदार,
डालें उस को वाह-वाह के दे-दे कर उपहार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
अब तो भाषा के कमलों पै, बरसे बैर-तुषार।
गाने के जिस से न चमागे शंकर नीरज चार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

अन्योक्ति मूलक मनोवेदना

(दोहा)

विधि क्या से क्या होगया भटकी काल कुचाल।
हंसों की महिमा मिटी बगला बने मराल ॥

(सुन्दरी सवैया)

इस मानसरोवर से अपनी
जल पीकर का न मिलान करेंगे।
पिक, चातक, कीर, चकोर, शिखी
सब का अब तो अपमान करेंगे ॥
कवि शंकर काक रसान, कुही
कुल को अति आदर दान करेंगे।
बकराज मराल बने पर हा
जल त्याग, न गोरस पान करेंगे ॥

कुपात्र पुरोहित

(घनाक्षरी कवित्त)

जन्म की बधाई घर, नाम की धराई, पूजा-
मुण्डन की और कर्ण-वेधन की पावेंगे।
ब्रह्म-दण्ड देंगे, लेंगे चरण-पुजाई, आगे,
व्याह के अनेक नेग चौगुने चुकावेंगे॥
लेते ही रहेंगे दान दक्षिणा पुरोहितजी,
रोगी यजमान से दुधार धेनु लावेंगे।
शंकर मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशा के,
छोड़ेंगे न बरसी कनागत भी खावेंगे॥

बनावटी साधु

(भजन)

रँग रहा राग के रंग में,
तू कैसा वैरागी है।
पामर पोच कर्म करता है, कभी न पापों से डरता है,
रच पाखण्ड पेट भरता है, काटे काल कुसंग में,
मति हीन मन्द भागी है। तू कैसा वैरागी है॥
धर-धर धूनी आग पजारे, भर-भर चिलम चरस की झारे,
गाल बजाय गपोड़े मारे, ध्यान रहे हुरदंग में,
छल की ज्वाला जागी है। तू कैसा वैरागी है॥

जोर जमाय महंत कहायो गुरुजन की मशाल गहायो,
मद-वारिधि में मीन बहायो मन की मलिन उमंग में,
विपरीत लगन लागी है। तू कैसा वैरागी है॥
योग समाधि लगाय न जाने परम सिद्ध अपने को माने,
औरन के गुण दोष बखाने भूल भरी चितभंग में
सिख शंकर की त्यागी है। तू कैसा वैरागी है॥

हमारी दुर्दशा

(शार्दूलविक्रीडित वृत्त)

आ बैठी घर मोह मन्द-जड़ता विद्या विदा होगई।
पाई कायरता मलीन मन को हा! वीरता खोगई॥
जागी दीन-दशा दरिद्र-पन की श्री-सम्पदा सोगई।
माया शंकर की हँसाय हम को रुष्टा बनी रोगई॥

मोघू कविराज

(दोहा)

घूमे कविता-लोक में मानहीन कविराज।
मार कुमित्रा की सहे समझ कोढ़ में खाज॥

कोरे कथक्कड़

(दोहा)

रण्डी के रसिया बने, उपदेशकजी आप।
औरों से कहते फिरें, गणिका-गण के पाप॥

(महागीत)

ऊले उगल रहा उपदेश,
गढ़-गढ मारे ज्ञान-गपोड़े।

पण्डित बना निरकुश मूढ, कपटी, अधम अधर्मारूढ,
इस के गन्दे अवगुण गूढ, सुन लो कान लगा कर थोड़े।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े॥

चकता फिरता है दिन-रात, सब से कहता है यह बात,
मारो गणिका-गण पर लात, अपने कूट कुकर्म न छोड़े॥
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े॥

मेरा सुन्दर वदन विलोक, तन को, मनको सका न रोक,
झपटा, झटका पटका ठोक, अटका बार-बार कर जोड़े।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े॥

पकड़े काकोदर विकराल, चूमे जलज प्रफुल्लित लाल,
पूजे शंकर युगल—विशाल, ठग ने बाण मदन के तोड़े।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े॥

सुकविसमाज

(दोहा)

पूर्ण नायक नायिका जिनको मङ्गल-मान ।
क्यों न करें शृङ्गार के वे सत्कवि गुण-गान ॥

(गीत)

गुण-गान करें रसराज के
यश-भाजन सुकवि हमारे ।
वैसिक भूप, कुल पण्डित हैं धम-चतुरय से मण्डित हैं,
त्रिविध नायिका से मण्डित हैं, मत-शिरा रसिक-समाज के,
रति-वल्लभ मदन-दुलारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
निरखी रस में चार अनूढ़ा निपट अछूती रही न ऊढ़ा
परकी विदुषी और विमूढ़ा सफल मधम कर काज के
हँस मधुर वचन उचारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
वर अज्ञात यौवना पटकी मन में ज्ञात यौवना अटकी,
हाय नवोढ़ा की छवि लटकी पकड़ चरण शुभ काज के,
छल-बल बरसाय पधारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
साथ स्वकीया शुद्ध सगम से पूजी परकीया तन-मन से
गणिका भी अपनाली मन से कर करतब सुख-साज के
शंकर कुल-चरित सुधारे ।
यश भाजन सुकवि हमारे ॥

बेजोड़ होली

(दोहा)

होली के हुरदङ्ग ने, धार कुमति का रङ्ग ।
छोडी लाज, समाज का, कर डाला रस भङ्ग ॥

(गीत)

भारत, कौन बदेगा होड,
तुझ से होली के हुल्लड की ।
भटकें मतवालों के गोल, खेलें खोल-खोल कर पोल,
पीटें ढोर ढमाढम ढोल, गाते डोलें तान अकड़ की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड की ॥
ऊले प्रामादिक हुरदङ्ग, बरसे दुर्व्यसनों का रङ्ग,
उमगी भूमे भ्रम की भङ्ग, लीला ऐंठ दिखाती अड की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
शुद्धा विधि का वेष बिगाड़, फरिया लोक-लाज की फाड,
झझट-झोंके झगडे झाड़, फूँके, आग वैर की भडकी ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
विद्या-बल से पिण्ड छुडाय, धन की पूरी धूलि उड़ाय,
शङ्कर धी का मुण्ड मुडाय, फूटी आँख फूट की फडकी ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥

---

(४)

गोरी धन पर आज, धनी की चाह टपकती है।
श्यामा लगन लगाय, पिया की ओर लपकती है॥
चढ़ी चंचल पर भोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(५)

लोक लाज पर लात, मार कर बात बिगाड़ी है।
उड़ रहा हुरदंग, सुमति की फरिया फाड़ी है॥
अकड़ की चमकी चोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(६)

उछल-उछल कर उन, ढमाढम ढोल बजाते हैं।
थिरकें थकें न थोक, गितकड़, तुकड़ गाते हैं॥
ठनाठन ठनी ठठोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(७)

सबके मस्तक लाल, न किसका मुखड़ा काला है।
भाड़ भस्म रमाय, रहे हुल्लड़ मतवाला है॥
न इसमें कण्टक-टोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

होली है

(दोहा)

फागुन में फूले फिरें खुल-खुल खेलें फाग।
गोरी-रसियों को फले, रंग-राग-अनुराग॥

(घनाक्षरी कवित्त)

देखो रे अजान, ऊत खेलें फाग फागुन में,
भङ्ग की तरङ्गों में अनङ्ग सरसाया है।
बाजें ढप-ढोल नाचें गोल बाँध-बाँध गावें,
साखी सर बोल भारी हुल्लड मचाया है॥
बौरे अवधूत भूखे भारत के छैला बने,
भूत-गण जान धोखा शङ्कर ने खाया है।
दूर मारी लाज आज गाज गिरी सभ्यता पै,
शठों का समाज लठ-राजधनि आया है॥

पत्रिका और पत्रों को होली

(दोहा)

सम्पादक छैला बने, रसिक बने लिक्खाड।
होली के हुरदंग की, देख उखाड़ पछाड़॥

(घनाक्षरी कवित्त)

*माता भगिनी का भाव भावे न वसुन्धरा को
लक्ष्मी का लक्ष्य कमला के मन भाया है।
चन्द्रिका प्रभा के बीच सन्ध्या का सुहाग बढ़े
पतिव्रता—सरस्वती ने रङ्ग बरसाया है॥
मोहिनी सी लागे हितकारता प्रियंवदा की
सौरभ सनातनी पताका ने उड़ाया है।
ऐसी बहु वनिताहितैषिणी बनाई है जो,
शङ्कर बिहारीलाल खूब बनिआया है॥

कपूत धूर्त

(दोहा)

बात बिगाड़ी बाप की कर कपूत न पाप।
प्रभु बिसार सीस पै धार कुकर्म-कलाप॥

---

*माता १ भारतभगिनी २ वसुन्धरा ३, लक्ष्मी ४ कमला ५ विलासपात्र चन्द्रिका ६ कुलीनहितमसा ७ सन्ध्या ८, सरस्वती ९, मोहिनी १० हितकारी ११ प्रियंवदा १२, सनातन-धर्म-पताका १३, वनिताहितैषिणी १४ बिहारीलाल = रसिकमित्र १५।

(गीत)

ऊलें उद्धत ऊत उतार,
धन की धूलि उड़ानेवाले ॥
श्रम का सारा सार निचाड़, देकर डेढ लाख का जोड,
तन से, धन से नाता तोड़, चलते हुए कमाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
पूँजी कृपण पिता की पाय, मोधू उच्च कुलीन कहाय,
मन की माया को उमगाय, उफने पेट फुलाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥
छैला लिखना-पढना छोड, अकड़े विद्या से मुख मोड़,
फूले आँख सुमति की फोड, पशुता को अपनाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥
भाये बढिया भोग-विलास, बैठे वञ्चक, पामर पास,
करते सिंहों का उपहास, गीदड गाल बजाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उडाने वाले ॥
पाये मन भाये सुख-भोग, सूझे विषयों के अतियोग,
घेरें चाटुकार, ठग लोग, अटके मुक्खड़ खानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥
निथरे, छने कसूमा, भङ्ग, उड़ने लगी वारुणी सङ्ग,
चॉडू, मदक विगाडे ढङ्ग, झूमें चिलम चढाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उडाने वाले ॥

भिक्षुक हो बैठे निरुपाय, निकला हितू न कोई हाय।
छोड़े प्राण हलाहल खाय, उठते नहीं उठाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥
ऐसे दाहक दृश्य विलोक, शङ्कर किसे न होगा शोक,
अब तो गुण्डों की गति रोक, ठाकुर, ठीक ठिकाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

अनार्य्या भार्या

(दोहा)

द्वार अविद्या का किया, जिस भारत ने बन्द।
नारी हैं उस देश की, अब ऐसी मतिमन्द ॥

(घनाक्षरी कवित्त)

आखतें दिखाऊँगी अघोरी से न और कहीं,
भोंदुआ के बाप का छदाम ठगवाऊँगी।
मीरा मनवाऊँगी जमात जोड़ जोगनों की,
गूँगा पीर जाहर की जोति जगवाऊँगी ॥
चादर चढाऊँगी बराही के चबूतरा पै,
भोर उठ चूहड़े का झाड़ा लगवाऊँगी ॥
टोना टलवाऊँगी गपोड़े मान शङ्कर के,
जीजी इस लाला पै हरा न हगवाऊँगी ॥

रूठे लाल को लोरी

(दोहा)

लोट रहा क्यों भूमि में रूठ रूठ मेरे लाल ।
चल नानी का छोड़ दे रेशम मार कपास ॥

(गीत)

मत रोवे लल्लुआ आइके
हँस बोल मनोहर बोली ॥

हाय ! भूमि में लोट रहा है मेरी लाल ललाट रहा है
हाथ पाँव पटोट रहा है, उठ कर मसुली म्याइके ।

ले चिगुल फिरकनी गोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

मान कहा कनियाँ में आजा पीकर दूध, मिठाई खाजा,
लाल खिलौनों में मन राखा सब को पटक पछाइके ।

टूट जाय न भटके दोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

प्यारे पीट बहन भाई को पकड़ बुआ को, भौजाई को,
घर पलीट चची-ताई को मसपत बोलेंगे फाड़के ।

फिर बार-बार कर बोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

दु-दु गाली तुमने भर को नाच नचाके सारे घर को
ठीक मग बाबा शेखर को लिपटा के मूँछ चबाइके ।

कर ठसक पिता की पोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

कर्कशा

(मालती सवैया)

सास मरे ससुरा पजरे इस,
आगर में पल को न रहूँगी ।
सौति जिठानी छुटी ननदी अब,
एक कहेगी तो लाख कहूँगी ॥
जेठ जलाया को मारूँ पटा सुन,
देवर की फबती न सहूँगी ।
ले बस अन्त नहीं पिया शंकर,
पीहर की कल गैल गहूँगी ॥

धूमकेतु

(दोहा)

मोह-जाल में जो फँसे, बिन विज्ञान-विकाश ।
क्यों न महामारी करे, इन असुरों का नाश ॥

(गणेश गीत)

विकराल कलेवर धार,
धरा पर धूम्र केतु आये ॥
तक तक तीर मार ने मारे, रुद्र देव ने नयन उघारे,
जो रिस रही तीसरे दृग में, उस ने उपजाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

त्रिभुवन-कमल पिता के प्यारे हीन किये हम सबको सारे,
आदर पाय रोग मंडल में अगुआ कहलाये।
वि क० वा० व बू आये ॥
सर्व-नाश के रसिक सयाने, व्यास देव से प्रभु अब जाने,
तब तो आप महाभारत के लेखक ठहराये।
वि० क भा ब बू० आये ॥
अब सरकारी हाकम नहीं है, तन मोटा गज-मुख नहीं है,
महिमा छोड गुरु अणिमा की, पूँछ पकड आये।
वि क० भा० ब० बू आये ॥
अब असंख्य कीट अति छोटे, साठ बाल से अधिक न मोटे
अणुगत आप यंत्र के द्वारा देख परख पाये।
वि क० भा ब बू० आये ॥
जब से प्रभु का ठीक ठिकाना हम ने बरसी तन में जाना
तब से पूज-पूज कर देखे सब से पुजवाये।
वि० क० भा ब० बू आये ॥
शुभ विहार किया करते हो केवल पावक से डरते हो
वैदिक होम हीन भारत पै निर्भर चढ आये।
वि क भा ब बू आये ॥
ठौर ठौर मुरदे गड़ते हैं, प्रभु के भोगस्थल बढ़ते हैं
इन मूर्खों पर हाय! अभागे नेक न पछताये।
वि क भा ब बू आये ॥

कालकूट विल में घुस घोलें, प्रभु को लाद लुड़कते डोलें,
क्षुद्र काय वाहन द्रुतगामी मूषक मन भाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
जितने चूहों पर चढते हो, मार-मार करते बढते हो,
वे सब के सब प्रेत-लोक को, पल में पहुँचाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
बीन-बीन कर दीन बिचारे, जीवन प्राण हीन कर मारे,
पीन कुटुम्ब धींग धनिकों के ढिल्लड कर ढाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
मानव दल-पल्लव से तोड़े, वानर, कीट-पतग न छोड़े,
उरग विहग, और चौपाये, वलि वनाय खाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
पहले तीव्र ताप चढि आवे, पीछे कठिन गाठ कढि आवे,
पुनि प्रलाप यों भाँति-भाँति के, कौतुक दरसाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
देख-देख भय, शोक, उदासी, विकल पुकारें भूतल-वासी,
हुआ हर्ष कपूर, कमल से मुखडे मुरझाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
खात-खात इतने दिन बीते, किये ग्राम, पुर, पत्तन रीते,
अवलों अपने लम्बोदर को, नाथ न भर पाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

नकीला नहीं सूँघता गन्ध है, निहारे बिना आँख का अन्ध है,
सुने तू बिना कान चूँचा रहे, छुपे पै अछूता समूँचा रहे।
मिला तू गिरा हीन वक्ता बली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अरे ओ अजन्मा, कहाँ तू नहीं, न कोई ठिकाना जहाँ तू नहीं,
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं, इसी से यथातथ्य माना नहीं।
शिखा सत्य की झूठ ने काटली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

तुझे तर्क ने तोल पाया नहीं, किसी युक्ति के हाथ आया नहीं,
कहीं कल्पना बाँझ का पूत है, कहीं भावना का महाभूत है।
मिलेगी किसी को न तेरी गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

कला अस्ति की जानती है तुझे, न धी बुद्ध को मानती है तुझे,
कहा सच्चिदानन्द तू वेद ने, बताया नहीं भेद निर्भेद ने।
न चूके दुई की दुनाली चली।
न विज्ञान फूली न विद्या फली॥

तुझे क्या किसी भाँति का तू सही, कथा मगलाभास की-सी कही,
जहाँ भक्ति तेरी रहेगी नहीं, वहाँ धर्म धारा बहेगी नहीं।
करे क्या पड़ी कीच मे निर्मली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो,
डरो कर्म-प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति की कामना भोग से।
अश्रद्धा-सुधा मे भरो अञ्जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महीनों पड़े देव सोते रहें, महीदेव डूबे डुबोते रहें,
मरी चेतना-हीन गगा वही, न पूरी कला तीरथों मे रही।
कमाऊ जडों की न पूजा टली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

निकम्मे सुरों की न सेवा करो, चढे भूतनी-भूतड़ो से डरो,
मसानी मियाँ को मना लीजिये, जखैया रखैया बना लीजिये।
करेंगे बली निर्बलों को अली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

हँसो हस को शारदा को तजो, उलूकासनी इन्दिरा को भजो,
धनी का धरो ध्यान छोटे-बडे, रहो द्रव्य की लालसा में खडे।
मिला मेल मा से महा मगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अनारी गुणी मानते हैं जिन्हें, गुणी जालिया जानते हैं जिन्हे,
उन्हें दान से, मान से पूजिये, हठी हेकड़ों के हितू हूजिये।
छकें छाक छूटे न छैला छली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महा मूढता के सँगाती रहो, दुराचार के पक्षपाती रहो,
जुड़ें चौधरी पञ्च पोंगा जहाँ, न बोला करो बोल बीले वहाँ।
बढ़ेंगे भला होड क्या जंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बुरी सीख सीखो सिखाते रहो, महा मोह-माया दिखाते रहो,
विरोधी मिलें जो कहीं एक-दो, उन्हें जाति से पाँति से छेक दो।
पड़े न्याय के नाम की यों डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बसे भैरवी चक्र में वीरता, विराजी रहे गर्व-गम्भीरता,
वहाँ वीर बानेत जाया करो, कड़े कण्टकों को जलाया करो।
बने वर्ण व्यापार की कज्जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

जगज्जाल से छूट जाना नहीं, बिना फन्द खाना कमाना नहीं,
न ऊँचे चढ़ो नीच होते रहो, बड़ों के बड़ों को बिगोते रहो।
कहो द्वैध की दाल चोखी गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

ठगो देशियों को ठगाया करो, बिना मेल मेले लगाया करो,
ढके ढोंग का ढाँच ढीला न हो, धवीली कहीं लोभ-लीला न हो।
ठगी दम्भ का पाय साँचा ढली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली।

नहीं सींचना खेत मग्राम के, खडे खेत जोता करो ग्राम के,
कड़े फूट के बीज बोया करो, सड़े मेल का खोज खोया करो।
जियें जाति जोता न होते हली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

छड़ी धार छैला छबीले बनो, रँगीले, रसीले, फबीले बनो,
न चूको भले भोग-भोगी बनो, किसी चेडनी के वियोगी बनो।
बने यो गलीमार घेरें गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अमीरो धुआँ धार छोड़ा करो, पडे खाट के बान तोड़ा करो,
मजेदार मूछें मरोड़ा करो, निठल्ले रहो काम थोडा करो।
चबाते रहो पान दौरे डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

रचो फाग होली मचाया करो, नई कचनी को नचाया करो,
रँगीले बने रग डाला करो, भरे भाव जी के निकाला करो।
रहो भग पीते, चबाते तली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

न प्यारा लगे नाच-गाना जिसे, कलकी करे माँस खाना जिसे,
कसूमा, सुरा, भग पीता नहीं, उसे जान लेना कि जीता नहीं।
कहो, रे लला हीज! होजा लली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

रुई, नाज देशी दिया कीजिये, विदेशी खिलौने लिया कीजिये,
इथेली घरों को सजाया करो, पड़े मग्न बाजे बजाया करो।
चढे मोटरों पै मफोली न ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

खरी खाँड़ देशी न लाया करो, बुरी बीट चीनी गलाया करो,
लुके लाट, शीरा मिलाते रहो, दुरंगी मिठाई खिलाते रहो॥
कहो, नाक यों धर्म की काटली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

पराई जमा मारनी हो जहाँ, अजी! काढ देना दिवाला वहाँ,
किसी का टका भी चुकाना नहीं, न थोथे उडाना थुकाना नहीं।
छुपी धूप की धाक छाया ढली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

चितेरे, कलाकार, कारीगरो, उठो काम का नाम ऊँचा करो,
पडे गुप्त क्यों विश्वकर्म्मा बनो, सु-शर्म्मा बनो, वीर वर्मा बनो।
कहो, लो बला नीचता की टली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

न भाषा पढो, राज-भाषा पढो, बढो वीर ऊँचे पदों पै चढो,
करो चाकरी घूँस खाया करो। मिले वेतनों को बचाया करो।
कहो, न्याय क्या नीति भी नापली,
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

गवाही कभी ठीक देना नहीं कभी सत्य से काम लेना नहीं
सभी मानसों को सताया करो, खरे खूसटों को बचाया करो।
दुराचार को मान को संगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

मला इबिदा की पढ़ों का कहा सजो सांझनी शैतानों से रहो,
करोंदी पिया मीट खाया करो टका हीरकों के चुकाया करो।
करो मारि गोरी मरे साँवली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

बहु-बेटियों को पढ़ाना नहीं परेतू पती को बढ़ाना नहीं
पती मारि नैना चुको आयगी किसी मित्र की मेम हो जायगी।
बनेगी नहीं हंसनी कागली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

सुनो तुम्हारो बात मही नहीं तुम्हीं की करामात रही नहीं
जहाँ मूल का क्षणिका रंग है, करे मागरो ' मागरी रंग है।
सुरंगी कला पिंगला काइली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

कबे पथ मू बात बोद नहीं गिनो गाँठ बाँधो गपोड़ नहीं
सुना की छिड़ी ईंट को गालियाँ बचा हो चुकी पीट को तालियाँ।
सुसीमा सुधा सिंधु की आँपली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

हायरे दुर्दैव !

(दोहा)

हा ! खोटे दिन आगये, बीत गया शुभ काल ।
भारत-माता ने जने, अबुध, हीज, कंगाल ॥

(दादरा)

हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
बौरे बड़ों के बड़प्पन की बड में,
छोटों के सारे सहारे समाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
भागे भले भोग भोजन को भटकें,
भूखे, अभागे, भिखारी कहाय गए ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
चेले चलाते न चेतन की चरचा,
पूजें जड़ों को पुजारी पुजाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
शिक्षा सचाई की शकर न समझें,
अन्धे अनारी अविद्या बढाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥

हायरे दुर्दैव !

(दोहा)

हा ! खोटे दिन आगये, बीत गया शुभ काल ।
भारत-माता ने जने, अबुध, हीज, कगाल ॥

(दादरा)

हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
बौरे बड़ों के बडप्पन की बड में,
छोटों के सारे सहारे समाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
भागे भले भोग भोजन को भटकें,
भूखे, अभागे, भिखारी कहाय गए ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
चेले चलाते न चेतन की चरचा,
पूजें जडों को पुजारी पुजाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
शिक्षा सचाई की शकर न समझें,
अन्धे अनारी अविद्या बढाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥

प्रभो, पाहि ! पाहि !!

(दोहा)

जिसकी चोटों से हुआ, जीवन चकनाचूर ।
हा ! मेरे उस दुःख को, करदे शंकर दूर ॥

(गीत)

करदे दूर दयालु महेश,
मुझ पै दारुण दुःख पड़ा है ।
मन में जम रहा अविवेक तन में उपजे रोग अनेक,
टिकती नहीं वचन में टेक पकड़े पातक-पुञ्ज कड़ा है ।
क दू द म मु दा दु पड़ा है ॥
भूखा रहे सदैव उदास बहुधा करता है उपवास
जिसका एक छदाम न पास घर में घोर दरिद्र अड़ा है ।
क दू द म मु दा दु पड़ा है ॥
भ्रम की पूँछ न पकड़ें पूत उद्यम करें न भरकर रूप
अपने तोड़ सुमति का सूत अविद्या बोवे कुटिल घड़ा है ।
क दू द म मु दा दु पड़ा है ॥
मेरा निरख नरक में वास निन्दक करते हैं उपहास
शंकर ! देख विषाद-विलास कपुआ कपटी काल खड़ा है ।
क दू द म मु दा दु पड़ो है ॥

भिखारी भारत

(राग देश)

भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ।
व्याकुल असन वसन बिन भोगे, निशदिन कठिन कलेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

सुख-साधन प्रमाद-पावक में, सब कर गये बेशम्र ,
भूला सुन पाखण्ड खण्ड के, अण्ड बण्ड उपदेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

दै मारौ आलस्य असुर ने, गहि शुभ गुण गण केश ,
रङ्क भयौ अब कौन कहैगौ, याहि निशङ्क नरेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

छोड़ गई प्राचीन प्रतिष्ठा, गौरव रह्यौ न लेश ,
शङ्कर घोर अमङ्गल टारौ, मङ्गल-मूल महेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

धनी से निर्धन

(दोहा)

काम रुखाई से पड़ा, सूख गई सब तीत ।
घेरा घोर दरिद्र ने, दैव हुआ विपरीत ॥

दीन पुकार

(दोहा)

देख दीनता दीन की दीनदयालु उदार।
दीनानाथ उतार दे भव-सागर से पार॥

(सगणात्मक सवैया)

कर कोप जरा मम मार चुकी बल-हीन सरोग कलेवर है।
परिवार घना धन पास नहीं सुखभग्न दरिद्र भरा घर है॥
सब ठौर न आदर-मान मिले मिलता अपमान अनादर है।
सुख दीन अकिंचन की सुधि ले सुन रे प्रभु तू यदि शंकर है॥

मन्दोद्भास का सार

(दोहा)

जिन के द्वारा हो गये हम दरिद्र के दास।
उन दोषों का हरण है समता मन्द प्रकाश॥

अनुराग-रत्न

विचित्रोद्भास

ब्रह्मोद्घोषण

अन्धन्तम प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ँरता ॥

प्रामादिक मदोन्मत्त

(शार्दूलविक्रीडित वृत्त)

आदित्यस्य गतागतैरहरह, र्क्षीयते जीवितम् ।
व्यापारैर्बहु कार्यभारगुरुभि , कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरण, त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूत जगत ॥

ॐ श्री राजर्षि महाकवि भर्तृहरि प्रणीत ।

(पञ्चचामर वृत्त)

महेश के महत्त्व का विवेक बार बार हो।
अनन्त एक तत्त्व का अनेकधा विचार हो॥
बिगाड़ से समाज के प्रबन्ध का सुधार हो।
प्रदीप्त पद्मराग के प्रपञ्च का प्रचार हो॥

पद्म-प्रताप

(सोरठा)

जिस का पुण्य प्रताप कोइ कह सकता नहीं।
महिमा अपनी आप समझाते वे सब कहीं॥

मेरा महत्त्व

(दोहा)

मनसा वाचा कर्मणा महिमा से भरपूर।
मेरे मान महत्त्व से गौरव रहे न दूर॥

(रोलाछन्द)

(१)

मङ्गल-मूल महेश मुक्ति-दाता शङ्कर है।
शङ्कर का उपदेश महाविद्या का घर है॥
शङ्कर जगदाधार तुम्हें मैं जान चुका हूँ।
पशुपति का अवतार आप को मान चुका हूँ॥

(२)

मेरा विशद विचार, भारती का मन्दिर है।
जिस में वन्ध-विकार, कल्पना-सा अस्थिर है॥
प्रतिभा का परिवार, उसी में खेल रहा है।
अवनति को ससार-कूप में ठेल रहा है॥

(३)

रहे निरन्तर साथ, धर्म दश लक्षण धारी।
पकड़ रहा है हाथ, सुकर्मोदय हितकारी॥
प्रति दिन पाचों याग, यथाविधि करता हूँ मैं।
सकल कामना त्याग, स्वतन्त्र विचरताहूँ मैं॥

(४)

सार हीन हठ-वाद, छोड़ आचरण सुधारे।
छल, पाखण्ड, प्रमाद, विरोध विलास विसारे॥
मन में पाप कलाप, कुमत का वास नहीं है।
मदन, मोह, सन्ताप, कुलक्षण पास नहीं है॥

(५)

मुझ में ज्ञान, विराग, बुद्ध से भी बढ कर है।
अविनाशी अनुराग, असीम अहिंसा पर है॥
निरख न्याय की रीति, मुझे सब राम कहेंगे।
परख अनूठी नीति, सुधी घनश्याम कहेंगे॥

(६)

राग-हीन बलवान मनोहर मेरा तन है।
निश्चल प्रेम-प्रधान, सत्य-सम्पादक मन है॥
निर्मल कर्म विचार वचन में दोष कहाँ है।
गुरु-सा सभ्य उदार भव्य मृदु घोष कहाँ है॥

(७)

वीत-राग बिन दोष एक मुनि-नायक पाया।
निगुरा-पन का दोष उसे गुरु मान मिटाया॥
यद्यपि सिद्ध स्वतन्त्र जगद्गुरु कहलाता हूँ।
तो भी गुरु-मुख-मंत्र मान मन बहलाता हूँ॥

(८)

दुःख रूप सब भोग अविद्या के पहचाने।
सुख सम्पन्न प्रसन्न अर्थ अपरा के जाने॥
दोनों पर अधिकार परा विद्या करती है।
सच्चिदानन्द अपार एकता में भरती है॥

(९)

जिसकी अपनी आस न सीधा सुभग दिखावे।
जिसका कोप कराल न मन मिलाप सिखावे॥
जो सकल-सृष्टि का भोग नरक में ठेल रही है।
वह माया कहँ भार दोष सुख खेल रही है॥

(१०)

जो सब के गुण, कर्म, स्वभाव समस्त बतावे ।
जो ध्रुव धर्म-अधर्म, शुभाशुभ को समझावे ॥
जिस में जगदाकार, भद्र-मुख-भाव भरा है ।
वही विविधि व्यापार, परक विद्या अपरा है ॥

(११)

जीव जिसे अपनाय, फूल-सा खिल जाता है ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल जाता है ॥
जिस में एक अनेक, भावना से रहता है ।
उसको सत्य विवेक, परा विद्या कहता है ॥

(१२)

जिस में जड़ चैतन्य, सर्व-संघात समावे ।
जिस अनन्य में अन्य, वस्तु का बोध न पावे ॥
जिस जी में रस उक्त, योग का भर जावेगा ।
वह बुध जीवन्मुक्त मृत्यु से तर जावेगा ॥

(१३)

बालकपन में राँड़, अविद्या की जड़ काटी ।
तरुण हुआ तो खाँड़, खीर अपरा की चाटी ॥
अब तो उत्तम लेख, परा के बाँच रहा हूँ ।
बुढ़वा मंगल देख, जरा को जाँच रहा हूँ ॥

(१४)

गार्हस्थ्य मत मान रहे थे मेरे घर के ।
मैं भी गुरु गया मान, करे था लम्बोदर के ॥
शिक्षा में यह बात विराम न होता मैंने ।
उमगा यौवन-काल दम्भ-घट फोड़ा मैंने ॥

(१५)

पढ़ता था दिन रात महा श्रम का फल पाया ।
निखिल तंत्र निष्णात राजपंडित कहलाया ॥
आलस का बल पाय कपट गढ़ ताड़ लिया था ।
कपट गाढ़ बनाय घना धन जोड़ लिया था ॥

(१६)

रहे प्रतारक संग कपट की बेलि बढ़ाई ।
मन माने रस रंग मदन की रही चढ़ाई ॥
भोजन पान, विहार यथारुचि करता था मैं ।
विधि निषेध का भार न सिर पै धरता था मैं ॥

(१७)

बाल-विवाह विराग भाव रच पाप कमाया ।
ब्रह्मचर्य-व्रत-काल वृथा विपरीत गमाया ॥
अबला ने चुपचाप उठाय पताका मुझको ।
बेटा जन कर बाप, बनाय दिखाया मुझको ॥

(१८)

प्यारे गुरु लघु लोग, मरे घरबार बिसारे।
करनी के फल भोग भोग सुरधाम सिधारे॥
वनिता ने जब हाथ, हटा कर छोड़ा मुझको।
तब सुधार के साथ, सुमति ने जोड़ा मुझको॥

(१९)

पहले बालक चार, मृत्यु के मुख में डाले।
पिछले कौल-कुमार, कल्प-पादप से पाले॥
जिन को धन भण्डार, युक्त घर पाया मेरा।
अब शिव ने ससार, कुटुम्ब बनाया मेरा॥

(२०)

जिस जीवन की चाल, बुरा करती थी मेरा।
बीत गया वह काल, मिटा अन्धेर-अँधेरा॥
पिछले कर्म-कलाप, बताना ठीक नहीं है।
अपने मन को आप, सताना ठीक नहीं है॥

(२१)

हिमगिरि-स्नानागार, धवल मेधा-ध्रुवनन्दा।
जिसमें चूयक मार, मार मन रहा न गन्दा॥
पातक-पुञ्ज पजार, पुण्य भर पूर किया है।
ज्ञान प्रकाश पसार, मोह-तम दूर किया है॥

(२२)

ध्यान बिना हठ-योग अनगढ़-समाधि लगाना।
कर्म-योग-फल भोग, अमल-कल-भूत भगाना॥
क्या मुझ-सा व्रत-सिद्ध, सुधारक और न होगा।
होगा पर सुप्रसिद्ध सर्व-शिरमौर न होगा॥

(२३)

क्या करते मतिवाद कपिल मुनि मेरे ही से।
गोतम कृष्ण कणाद पतञ्जलि व्यास सरीखे॥
युक्ति हीन नर मन्द न जी में भर सकते हैं।
सर्व शत्रु मत पन्थ भला क्या कर सकते हैं॥

(२४)

मत कर मेरा जोड़ न ऋत अज्ञान अड़ेगा।
पण्डित भी मम जोड़ न ठेक टिकाय सकेगा॥
मिला न भारत मध्य सुधार-मण्डल में कोई।
दिखला सका सुकर्म न वैदिक दल में कोई॥

(२५)

मैंने असुर अज्ञान प्रमादी पिशाच पछाड़े।
हार गये अभिमान भरे अवधूत-अखाड़े॥
जिस की चपला वाक् ऐरा को हर सकती है।
क्या उस हल को खाक यहाँ भी गल सकती है॥

(२६)

हेकड़ होड दबाय, उलझने को आते हैं।
पर वे मुझे नवाय, न ऊँचा पद पाते हैं॥
जिसका घोर घमण्ड, घरेलू घट जाता है।
वह प्रचण्ड उद्दण्ड, हठीला हठ जाता है॥

(२७)

ठग मेरे विपरीत, बुरी बातें कहते हैं।
घर ही में रणजीत, बने बैठे रहते हैं॥
मैं कलि-काल विरुद्ध, प्रतापी आप हुआ हूँ।
पाकर जीवन शुद्ध, निरा निष्पाप हुआ हूँ॥

(२८)

जो जड मति का कोप, न पूजेगा पग मेरे।
उस अजान के दोप, दिखा दूँगा बहुतेरे॥
जो मुझ को गुरु मान, प्रेम के साथ रहेगा।
उस पर मेरे मान दान का हाथ रहेगा॥

(२९)

मैं असीम अभिमान, महा महिमा के बल से।
डरता नहीं निदान, किसी प्रतियोगी दल से॥
निगमागम का मर्म, विचार लिया करता हूँ।
तदनुसार सद्धर्म, प्रचार किया करता हूँ॥

(२०)

तन में रही न व्याधि न मन में आधि रही है।
रही न अन्य उपाधि अनन्य समाधि रही है॥
अतएव शिष्य को सर्व, सुधार सिखा सकता हूँ।
अपना गौरव-गर्व अदम्य दिखा सकता हूँ॥

(२१)

मुझ को साधु समाज शुद्ध जीवन जानेगा।
सर्वोपरि मुनि-राज सिद्ध-मण्डल मानेगा॥
अपना नाम पवित्र प्रसिद्ध किया है मैंने।
शुभ चरित्र का चित्र दिखाय दिया है मैंने॥

(२२)

यद्यपि बाहर दूर कर चुका हूँ मैं मन से।
दासी मठ भरपूर भरा रहता है मन में॥
छोड़ दिये सुख भोग विषय रस त्यक्ता हूँ मैं।
मान करें सब लोग, सुयश-मधु भूखा हूँ मैं॥

(२३)

शब्द और उपदेश पढ़ा सकता हूँ पूरे।
अङ्ग विभाजक भेद रहेंगे नहीं अधूरे॥
नव प्रवाह तरंग, विविध विद्या हूँ सारे।
पौराणिक रस-रङ्ग प्रसङ्ग सिखा दूँ सारे॥

(३४)

ग्रन्थ बिना अनुवाद, किसी भाषा का रखलो ।
उस के रस का स्वाद, खड़ी बोली में चखलो ॥
जो अनुचर अल्पज्ञ न ज्यों का त्यों समझेगा ।
वह मुझ को सर्वज्ञ, कहो तो क्यों समझेगा ॥

(३५)

यदि मैं व्यर्थ न जान, काम कविता से लेता ।
तो तुक्कड़- कुल मान, दान क्या मुझे न देता ॥
लेखक लेख निहार, लेखनी तोड़ चुके हैं ।
सम्पादक हिय हार, हेकड़ी छोड़ चुके हैं ॥

(३६)

शिल्प रसायन सार, कहो जिसको सिखला दूँ ।
अभिनव आविष्कार, अनोखे कर दिखला दूँ ॥
भूमि-यान, जल-यान, वितान बना सकता हूँ ।
यत्र सजीव समान, अजीब बना सकता हूँ ॥

(३७)

गोल भूमि पर डोल, डोल सब देश निहारे ।
खोल गगन की पोल, वेध कर परखे तारे ॥
लोक मिले चहुँ ओर कहीं अवलम्ब न पाया ।
विधि ने जिसका छोर छुआ वह लम्ब न पाया ॥

(१८)

दे करके उपदेश पुण्य देशी मण्डल में।
किया न अनुप्रवेश राम विद्रोही दल में॥
अब सरिता के तीर कुटी में वास करूँगा।
त्याग अनित्य शरीर काल का ग्रास करूँगा॥

(१९)

मेरा अनुचर-वर्ग कुनीति नाश करेगा।
राम-रोष कर वज्र कुचालों को कुचलेगा॥
मानव-वंश की दूर दुर्दशा कर देवेगा।
भारत में भरपूर प्रसाद भर देवेगा॥

(४)

सुनकर मेरी आज अनूठी राम-कहानी।
धन्य धन्य मुनि-राज कहेंगे आदर दानी॥
पण्डित परमोदार मनीषी प्रणाम करेंगे।
लम्पट शठ, लबार वृथा बदनाम करेंगे॥

मन मोदक

(दोहा)

दूर करेंगे आलसी, मन-मोदक से भूख।
पुष्प फलेंगे बिन के सुन्दर नीरस रूख॥

मेरा मनो राज्य

(सपुच्छ चतुष्पदी छन्द)

मङ्गल-मूल सच्चिदानन्द, हे शङ्कर! स्वामी सुख-कन्द,
देव रहो मेरे अनुकूल, दूर करो सारे भ्रम-शूल।
कर दानी, मनमानी ॥

व्याकुल करें न पातक-रोग, जीवन भर भोगूँ सुख-भोग,
हो सदभ्युदय का जब अन्त, मुक्ति मिले तब हे भगवन्त।
कर दानी, मनमानी ॥

चेतनता न तजे विश्राम, मन मयूर नाचे निष्काम,
वाणी कहे वचन गम्भीर, खोटे कर्म न करे शरीर।
कर दानी, मनमानी ॥

ध्रुव की भाँति पढ़ा दो वेद, ब्रह्म जीव में रहे न भेद,
करें निरङ्कुश मायावाद, मिटे अविद्याजन्य प्रमाद।
कर दानी, मनमानी ॥

जाति-पाँति मत-पन्थ अनेक, दूर-दूर छुआछूत को छेक,
सब को फुरे विशुद्ध विवेक, उपजे धर्म सनातन एक।
कर दानी, मनमानी ॥

जिस में सब की शक्ति समाय, मैं भी उस मत को अपनाय,
धार विश्व की विमल विभूति, सिद्ध कहाय करूँ करतूति।
कर दानी, मनमानी ॥

हे प्रभु! द्वार दया का खोल, कर दो दान मुझे भूगोल,
सागर सारे देश अनेक, सब का ईश बनूँ मैं एक।
कर दानी, मनमानी ॥

फलें सदुद्यम के व्यवहार, शिल्प, रसायन बढ़ें अपार,
पौरुष-रवि का पाय प्रकाश, उन्नति-नलिनी करे विकाश।
कर दानी, मनमानी ॥
लगे भूमि पर स्वल्प लगान, जल पावें बिन मोल किसान,
उपजें विविध भाँति के माल, पड़े न मँहगी और अकाल।
कर दानी, मनमानी ॥
आयुर्वेद-विहित कविराज, सादर सब का करें इलाज,
बटें सदाव्रत रुकें न हाथ, मरें न भिक्षुक, दीन, अनाथ।
कर दानी, मनमानी ॥
दो-दो विद्यालय सब ठौर, खोलें अध्यापक सिरमौर,
करें यथाविधि विद्या-दान, उपजावें विदुषी विद्वान।
कर दानी, मनमानी ॥
साङ्ग वेद, दर्शन, इतिहास, ललित काव्य, साहित्य-विलास,
गणित, नीति, वैद्यक, संगीत, पढ़ें प्रजा-जन बने विनीत।
कर दानी, मनमानी ॥
सीखें सैनिक शस्त्र-प्रयोग, वीर बनें साधारण लोग,
धारें टेक टिकाय कृपाण, वारें धर्मराज पर प्राण।
कर दानी, मनमानी ॥
अखिल बोलियों के भण्डार, विद्या के रस-रङ्ग-विहार,
भुवन-भारती के शृङ्गार, रहें सुरक्षित ग्रन्थागार।
कर दानी, मनमानी ॥

निकलें नये-नये अखबार, पाठक पढ़ें विचार-विचार
सब के बस कुयोग सुयोग प्रकट करें सम्पादक लोग।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

जो सदर्थ का सार निचोड़ परखें पक्षपात को छोड़
शुद्ध न्याय को करें प्रसिद्ध, बनें समालोचक वे सिद्ध।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

जिन के पास न राग न रोष सत्य कहें सब के गुण-दोष,
प्रेम भूतल-हितकर-प्रधान विधि-निषेध का करें विधान।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

पण्डित-पटु निर्भय धीर वीर महा मति अति गम्भीर
कम प्रवीण कुलीन सपूत परम-साहसी विचरें दूत।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

नवि सागर परम सुजान नीति विशारद न्याय-निधान,
परहितकारी सत्कवि राज सब से हो संगठित समाज।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

न्यायाधीश बड़े पद पाय कर ठीक सात्विक न्याय
पाकर पक्ष न टलें पाप ग्राप न चाहें घूँस का माल।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

लहें न कम शासित भाग चल न सके मरे अभिभाग,
प्रजा-पुरोहित वीर बकील बनें न न्याय-विपिन के भील।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

हेल-मेल का बढ़े प्रचार, तजें प्रतारक अत्याचार,
मोक्ष राज-पद्धति के मंत्र, प्रजा रहे सानन्द, स्वतंत्र।
कर दानी, मनमानी ॥

करे न कोप महासुर मोह, उठे न अधम राज-विद्रोह,
चलें न छल भट के नाराच, पियें न रक्त प्रपञ्च-पिशाच।
कर दानी, मनमानी ॥

रहे न कोई भी परतंत्र, बनें न नीचों के षड्यंत्र,
बैर-फूट की लगे न लाग, मार-काट की जले न आग।
कर दानी, मनमानी ॥

चतुरङ्गिनी चमू कर कोप, करदे खल-मण्डल का लोप,
गरजें धीर-वीर घन-घोर, भागें प्रतिभट, वञ्चक, चोर।
कर दानी, मनमानी ॥

पकड़ें अस्त्र शस्त्र रणजीत, बाधक दुष्ट रहें भयभीत,
जो कर सकें पराभव घोर, बने न वैसे करण-कठोर।
कर दानी, मनमानी ॥

राज-कर्म-पद्धति की चूक, जो कवि कह डाले दो टूक,
उसको मेरा चक्र-प्रचण्ड, छल से कभी न देवे दण्ड।
कर दानी, मनमानी ॥

सुख से एक चटोरे माल, एक रहे दुखिया कंगाल,
अपना कर ऐसे दो देश, मैं न कहाऊँ अन्ध नरेश।
कर दानी, मनमानी ॥

जिन आलस्य-दास के पास दीर्घसूत्रता करे निवास
ऐसे दल का दरस निहार, दूर रहें प्यारे परिवार।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

चाटुकार बिन पैठ, सपाट, भौंड भगतिये भडुआ, भाट
पाखंडी बक पिशुन कराल, सब का संग तजें दुख-पाल।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

ज्वारी जार, वधिक ठग, चोर, अधम आततायी घुसखोर,
लोलुप लम्पट शठ, लबार बढ़ें न ऐसे असुर असार।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

हिंसक लोग कृपालु कहाय शुद्ध निरामिष भोजन पाय
करें दुग्ध-घृत से तन पीन कभी न मारें खग मृग, मीन।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

कर कुमारी जिस की चाह रखे उसी के साथ विवाह
बँधे न बारे वर के साथ बिके न बूढ़े नर के हाथ।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

वरे न मीर धनी बहु बार रहे न वित्त विहीन कुमार
करे न विधवा-पुत्र विलाप बढ़े न गर्भ-पतन का पाप।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

ठगें न कुलटा के रस-रंग करे न मादकता मतिभंग
सात्विक मन की लगन न छूट कायर करें न कलित कूट।
कर ज्ञानी मनमानी ॥

मात-पिता, गुरु, भूपति, मित्र, सिद्ध प्रसिद्ध, पवित्र चरित्र,
गण्य गुणी जन, धन्य धनेश, सबका मान करे सब देश।
कर दानी मनमानी ॥
ग्रन्थकार, कवि, कोविद, छात्र, अध्यापक, भट, साधु, सुपात्र,
चित्रकार, गायक, नट, वार, सबको मिला करे उपहार।
कर दानी, मनमानी ॥
जो जगदम्बा को उर धार, करें अलौकिक आविष्कार,
उन देवों के दर्शन पाय, पूजा करूँ किरीट झुकाय।
कर दानी, मनमानी ॥
जो निशङ्क नामी कविराज, आय निहारें राज-समाज,
करे प्रबन्धों के गुण—गान, वह पावे दरबारी दान।
कर दानी, मनमानी ॥
घटे न मङ्गल, पुण्य-प्रताप, बढे न पापजन्य परिताप,
भाव सत्ययुग का भर जाय, कलियुग की नानी मर जाय।
कर दानी, मनमानी ॥
यों सामाजिक धर्म पसार, करूँ प्रजा पर पूरा-प्यार,
पकडे न्याय-नीति का हाथ, विचरे दण्ड दया के साथ।
कर दानी, मनमानी ॥
नाना विधि विभाग, सयोग, दिव्य, दृश्य देखें सब लोग,
धरें सुकृति का सीता नाम, समझें मुझे दूसरा राम।
कर दानी, मनमानी ॥

क्या बकवाद किया बेजोड़ बस होली सिद्धियों की होड़
धार मन्दभागी मुख मौन, तेरी सनक सुनेगा कौन।
कर यानी, मनमानी ॥
पाया घोर नरक में वास बीत हायन हाय ! पचास ॥
आ पहुँचा है अन्तिम काल क्या होगा बन कर भूपाल।
कर यामी मनमानी ॥
अब तो सब से नाता तोड़ बन्धन-रूप दुराशा छोड़
रे ! मन ज्ञान-सिन्धु का मीन हो जा परम तत्त्व में लीन।
कर यानी मनमानी ॥

वेदान्त-विलास

(दोहा)

भगवद्गीता में मिला सदुपदेश का सार ।
क्यों न करें श्रीकृष्ण का गौरव का अवतार ॥

(+गीत)

बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ।
बंशी की तानें सुन सारी सखियाँ,
सबही सजें गोरी काली सिंदुरिया ।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया ॥

+इस गीत के शब्दों पर विशेष ध्यान न देकर केवल भावार्थ पर गहरी गवेषणा पूर्वक विचार कीजिये। वेदान्त है और की बात न समझिये। (मधुराम)

देखे दिखावे जिसे राम रसिया,
फोड़े उसी की रसीली कमुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

सोवे न, जागे न, देखे न सपना,
प्यारी की चौथी अवस्था है तुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

माया के धागे में मनके पिरोये,
न्यारा नहीं कोई माला से गुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

सत्ता पखुरियों में फूलों की फूली,
फूलों की सत्ता में पाई पखुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

राजा कहाता है जो सारे ब्रज का,
ऊधो, उसे कैसे माने मथुरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

टेढ़ी न भावे त्रिभंगी ललन को,
सीधी करी शकरा-सी कुबरिया।
बाँके बिहारी की बाजी बँसुरिया॥

———

प्रेमी पंथ का प्रेमोद्गार

(दोहा)

गीता में जिन के सुने परम ज्ञान के गीत।
क्या वे कृष्ण समाज में बरतते थे विपरीत॥

(गीत)

अब तो बने द्वारकाधीश,
भोगगवीश कहाने वाले।

सर्वाधार, विशुद्ध, अकाय उतरे बन्दीगृह में आय
जन्मे पुत्र-भाव अपनाय ऊँचा पितु-पद पाने वाले।
अ ब द्वा भो० कहाने वाले॥

निर्गुण सत्ता का न विसार, प्रकटे ब्रह्म गुणों का धार
विचरे नर-लीला विस्तार, बनगे लोक लुभाने वाले।
अ ब द्वा भो कहाने वाले॥

पुण्यश्लोक भाग्यक-प्रताप करते प्यारे कर्म कलाप
नाचे ब्रज मण्डल में आप सब का मान भगाने वाले।
अ ब द्वा भो कहाने वाले॥

जिनने उठवा डाकू चोर, उनको देख सबल कठोर
देखें आप न अपनी ओर, माखन-चाख चुराने वाले।
अ ब द्वा भो कहाने वाले॥

विजयी जाने सब संसार, जबकी जरासन्ध से हार
मान मूल विजय व्यापार, रण में पीठ दिखाने वाले।
अ ब० द्वा भो कहाने वाले॥

वनिता रही स्वकीया संग, परखे परकीया के अङ्ग ,
मारा मार किया रस भंग, रीझे रसिक रिझाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
प्यारे व्रज का वास विहाय, प्रभु सौराष्ट्र द्वीप में जाय ,
महिमा महाराजों की पाय, चकमे धेनु चराने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
लीला जगती-खण्ड विशाल, दीनानाथ नहीं अब ग्वाल ,
निर्भय वन बैठे भूपाल, वन में वेणु बजाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
आकर मिला सुदामा यार, पूजा कर स्वागत सत्कार ,
दानी बने दयालु उदार, तण्डुल चाव चबाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
सौंपा अर्जुन को उपदेश बण्टाढार किया सब देश ,
कतरे सर्व-नाश के केश, जय सद्धर्म बढ़ाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
कल्पित भेद-हीन के भेद, यद्यपि नहीं बताते वेद ,
तो भी मिलते अन्तश्छेद, सब में श्याम समाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥
प्यारे भावुक भक्त सुजान, आओ करो प्रेम-रस पान ,
मूँदे मन्दिर में भगवान, शकर भोग लगाने वाले ।
अ० व० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

रच-घर कानो में लटका लो, कुण्डल काढ, मेकराफून ।
तज पीताम्बर, कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून ॥

(५)

पटक पादुका, पहनो प्यारे, बूट इटाली का लुकदार ।
डालो डबल वाच पाकट में, चमकें चेन कचनी चार ॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता, बेंत बगल मे मार ।
मुरली तोड मरोड बजाओ, बाँकी बिगुल सुने ससार ॥

(६)

फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहनालो पँचरगी गौन ।
अबलक्क लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनेगी कौन ॥
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटल में दिन-रात ।
पर नजखोआ ताड न जावें, बढिया खान, पान की बात ॥

(७)

वैनतेय तज व्योम यान पै, करिये चारों ओर विहार ।
फक-फक फूँ-फूँ फूँको चुरटें, उगले गाल धुआँ की धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय ।
चाँटो पटक नई प्रभुता के, भारत जाति-भक्त हो जाय ॥

(८)

कह दो सुबुध विश्वकर्मा से, रच दे ऐसा हॉल विशाल ।
जिस पै गरमी, नरमी वारें, काँगरेस-कुल की पण्डाल ॥
सुर, नर, मुनि, डेलीगेटों को, देकर नोटिस, टेलीग्राम ।
नाथ, बुलालो, उस मण्डप में, बैठें जेंटिलमेन तमाम ॥

(९)

उमगें सभ्य सभासद सारे, सर्वोपरि पद पावें आप।
दशक रसिक तालियाँ पीटें मार्चे मंगल मंत्र मिलाप॥
या मन विविध तालियाँ बोले टरींकी गिट-पिट को छोड़।
रोको उस गाभरगर्मा को करे न सर मापाकी होड़॥

(१०)

वेद-पुराणों पर करते हैं भारत-हिंदू बाद विवाद।
कान लगा कर सुनना स्वामी सब के कूट-कपटीले नाद॥
दोनों के अभिमत मत वाले बोध सभा में करो विचार।
सत्य-झूठ किसका कितना है ठीक बताओ न्याय पसार॥

(११)

जगदीश्वर ने बन्द किये हैं यदि विद्या-बल के भंडार।
तब क्या होता हाय! न करते तो भी अभिनव आविष्कार॥
समझाओ वैदिक सुजनों को उत्तम कर्म करें निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावें जीवित रहें कल्प लौं नाम॥

(१२)

लिपट पुराणों के अनुगामी उधर्में लिपटा इसकी ओर।
निकर आप का भी कहते हैं तजकर आर भगोड़ा चोर॥
प्रति दिन पाठ करें गीता के गिनते रहें रावरे नाम।
पर हा! मन मौजी मतवाले करते नहीं धर्म के काम॥

(१३)

कलुष, कलंक कमाते हैं जो, उन को देते हैं फल चार।
कहिये, इन तीरथ, देवों के, क्यों न छीनत हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकेंगे डाँकू उदरासुर के दास।
अधम, अनारी, नीच, करेंगे, मनमाने सानन्द विहार॥

(१४)

वैदिक पौराणिक पुरुषों में, टिके टिकाऊ मेल-मिलाप।
गैल गहें अगले अगुओं की इतनी कृपा कीजिये आप॥
जिस विधि से उन्नत हो बैठे, यूरुप, अमरीका, जापान।
विद्या, बल, प्रभुता, उन की सी, दो भारत को भी भगवान॥

(१५)

युक्ति-वाद से निपट निराली, सुनलो वीर अनूठी बात।
इस का भेद न पाया अब लों, है अवितर्क विश्व-विख्यात॥
योग विना क्वारी मरियम ने कैसे जने मसीह सपूत।
कैसे शक्रुलक़मर कहाया, छाया रहित ख़ुदा का दूत॥

(१६)

इस घटना की सम्भवता को, कहिये तर्क तुला पै तोल।
गड़बड़ है तो खोल दीजिये, ढिल्लड़ ढोंग ढोल की पोल॥
यह प्रस्ताव और भी सुनलो, उत्तर ठीक बतादो तीन।
किस प्रकार से फल देते हैं, केवल कर्म चेतना हीन॥

(१७)

देश आदि के अधिवेशन में पूरे करना इसने काम।
हिप-हिप-हुर्रों के सुनते ही खाना टिफ़न पाय आराम॥
झंझट-झगड़े मतवालों के थामो सब के अलग विभाग।
तीन चार दिन की बैठक में करवो संशोधन बेलाग॥

(१८)

बनिये गौर श्यामसुन्दरजी ताक रहे हैं दर्शक भीम।
हमको नहीं हँसाना बस के बाप बिछुपको कछुआ मीम॥
धार मानसिक संतापन को दूर करो भूतल का भार।
निष्कलंक अवतार कहेंगे शंकर सेवक बारम्बार॥

पद्म-पुकार

(दोहा)

बैठ मण्ठ-समाज में पाकर अमत मध्य।
या पुकारता है सुनो परम प्रतापी पद्म॥

(पद्मासन छन्द)

पद्मराम पुराम पिनाकी पद्मासन पशुराम।
पाँच अचल नाम शङ्कर के पद्मनार इस धाम॥
मस्तक ऊँचा रखाऊँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

बुध विद्या-वारिधि गुरु ज्ञानी, मेरे वासर-सूर।
उन का-सा अभिमानी मन है, मेरा भी भरपूर॥
उलझने को भिगारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
फागुन का फल फाग फबीला, फूला ऐप्रिल फूल।
दो गुण गटक दुलत्ती मारूँ, हाँकूँ अन्ध उसूल॥
तीसरी आँख उघारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
चुस्त पजामा, ढिलमिल जामा, मजे साहिबी टोप।
वारूँ तमलीसुल फैशन को, मियाँ, पुजारी, पोप॥
नक़ल ओछी न उतारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
चूनरि चीर, फाडटी फरिया पहना लाया गौन।
लेडी-पद्म व्लैक दुलहिन को, दाद न देगा कौन॥
प्रिया के पैर पखारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
सुन-सुन मेरे शब्द, बोलियाँ, चौंक पड़े चण्डूल।
पर जो हिन्दू कथन करेगा, हिन्दी के प्रतिकूल॥
उसे धमका धिक्कारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
इँगलिश डाग, नागरी गैंडा, उर्दू दुम्बा तीन।
निकलें पेपर, पत्र, रिसाले, मेरे रहें अधीन॥

चकरी-सा चकराऊँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

वरदू के अनुरूप रखमचे सिसूँ क्षविसे वीर ।
बीनी खूब मुरीद को पढ़ता बटी बोध पचीद ॥
चुनींदा मन गुहारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

जिस मयखाने में मतवालों का उफनेगा उन्माद ।
मैं भी उस दल में काम को बेहूदा बकवाद ॥
बिना पाथेय पधारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

जिस के तक जलधि न डूबे मत पन्थों के पोत ।
उसके सत्यामृतप्रवाह का क्यों न बहेगा सोत ॥
बनूँगा मीन मचारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

भूला गिरिजा गिरिजापति को मैं गिरजा में जाय ।
समझा सद्गुरु गॉड-पुत्र के गोरी प्रभुता पाय ॥
श्याम ईसू को बनाऊँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

फकड़ फक कर फूटा मैं फूल फली है फूट ।
सत-पन्थ भव-मण्डल मेरा क्यों न करेगा लूट ॥
पुत्र पूजा न बिसारूँगा ।
किसी से कभी न हारूँगा ॥

ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर डाढ़ी-मूँछ।
वाटर-बायसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूँछ॥
मरों को पार उतारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जाति-पाँति के विकट जाल में, जूझें फँसे गमार।
मैं अब सब को सुलझा दूँगा, कर के एकाकार॥
महा सद्धर्म प्रचारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

रसिक रहूँगा राजभक्ति का, बैठ प्रजा की ओर।
बाँध वधिक विद्रोही-दल को, दूँगा दण्ड कठोर॥
खटकतों को सहारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

गोरे गुरु-गण की खातिर में, खरच करूँगा दाम।
दमकेगा दुमदार सितार, बनके जगनू नाम॥
खिताबों को फटकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

लण्डन में कर वास बना हूँ, बैरिस्टर कर पास।
घेर मुवक्किल घटिया से भी, लूँगा नक़द पचास॥
बड़प्पन को विस्तारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जग में जीवन-भर भोगूँगा, मन माने सुख भोग।
परम रङ्क महँगी के मारे, प्राण तजें लघु लोग॥

मदिरा, खजुरी, भग, कसूमा, आसव, सर्व समान।
इन पवित्र मादक द्रव्यों का, कर पचामृत पान॥
नशीली बात विचारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जिस में वीरों को अभिरुचि का, चल न सकेगा खोज।
ऐसा कहीं मिला यदि मुझको, कण्टक-कुल का खोज॥
मुखानन्दी न जुठारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जिसने निगला धन्वन्तरि के, अमृत कुम्भ का मोल।
उस मदमाती डाकटरी की, बढिया बोतल खोल॥
पिऊँगा जीवन वारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जो जगदीश बनादे मुझको, अनथक थानेदार।
तो छल छोड़ वर्म-सागर में, गहरी चूबक मार॥
अकड के अङ्ग निखारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

यद्यपि मुझको नहीं सुहाते, वैदिक दल के कर्म।
ठाठ बदलता हूँ अब तो भी, धार सनातन धर्म॥
इसी से जन्म सुधारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

पास करूँगा कुल-पद्धति के, परमोचित प्रस्ताव।
हाँ पर कभी नहीं बदलूँगा, मै गुण, कर्म, स्वभाव॥

आठ-चटा-अट्ठावन पढलो, पाठक पञ्च-पुकार।
जो मृदु मुख लिक्खाड लिखेगा, इस का उपसंहार।
उसे दे दाद दुलारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

रंक-रोदन

(रौला छन्द)

क्या शंकर प्रतिकूल, काल का अन्त न होगा।
क्या शुभ गति से मेल, मृत्यु पर्य्यन्त न होगा॥
क्या अब दुःख-दरिद्र, हमारा दूर न होगा।
क्या अनुचित दुर्दैव, कोप कर्पूर न होगा॥

(२)

हो कर मालामाल, पिता ने नाम किया था।
मैं ने उन के साथ, न कोई काम किया था॥
विद्या का भरपूर, इष्ट अभ्यास किया था।
पर औरों की भाँति, न कोई पास किया था॥

(३)

उद्यम की दिन रात, कमान चढ़ी रहती थी।
यश के सिर पै वर्ण, उपाधि मढ़ी रहती थी॥
कुल-गौरव की ज्योति, अखण्ड जगी रहती थी।
घर पै भिक्षुक-भीड़ सदैव लगी रहती थी॥

(४)

जीवन का फल शुद्ध पुण्य बिनु पाय चुके थे।
कर पूरे सब काम कुलीन कहाय चुके थे॥
सुन्दर स्वर्ग समान विलास बिसार चुके थे।
हा! हम उन का अन्त अनन्त निहार चुके थे॥

(५)

बाँध जनक की पाग बना मुखिया घर का मैं।
कहला परमाधार रहा कुनबे भर का मैं॥
सुख से पहली भाँति निरंकुश रहता था मैं।
घर का खर्च बिगाड़ न कुछ भी कहता था मैं॥

(६)

जिनका सञ्चित कोश खिला कर खाया मैंने।
करके उन की होड़ न द्रव्य कमाया मैंने॥
घटका इकदम ह्रास नहीं पहचाना मैंने।
घटती का परिणाम कठोर न जाना मैंने॥

(७)

घर चाकर चार पुरानी बान बिगाड़ी।
लिया दिवाला काढ़ बनी दूकान बिगाड़ी॥
भाये दाम चुकाय बड़ों की कान बिगाड़ी।
छोड़ धर्म का पन्थ प्रथा विख्यात बिगाड़ी॥

(८)

अटके डिगरीदार, दया कर दाम न छोड़े।
छीन लिये धन-धाम, ग्राम अभिराम न छोड़े॥
बासन बचा न एक, विभूषण-वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि, पुलिस ने शस्त्र न छोड़े॥

(९)

न्याय-सदन में जाय, दरिद्र कहाय चुका हूँ।
सब देकर इन्सालवेण्ट पद पाय चुका हूँ॥
अपने घर की आप, विभूति उड़ाय चुका हूँ।
पर संकट से हाय, न पिण्ड छुड़ाय चुका हूँ॥

(१०)

बैठ रहे मुख मोड़, निरन्तर आने वाले।
सुनते नहीं प्रणाम, लूट कर खाने वाले॥
उगल रहे दुर्वाद, बड़ाई करने वाले।
लड़ते हैं बिन बात, अड़ी पै मरने वाले॥

(११)

कविता सुने न लोग, न नामी कवि कहते हैं।
अब न विज्ञ, विज्ञान, व्योम का रवि कहते हैं॥
धर्म-धुरन्धर धीर, न बन्दीजन कहते हैं।
मुझ को सब कंगाल, धनी निर्धन कहते हैं॥

(१२)

हाय ! विरद विश्वास आज विपरीत हुआ है।
मन विशुद्ध निरर्थक महा भयभीत हुआ है॥
कुल दरिद्र की मार, खल रस मग्न हुआ है।
आगम का मग रत सदाशिव वाम हुआ है॥

(१३)

प्रतिभा का प्रतिवाद प्रचण्ड पछाड़ चुका है।
आदर को अपमान कलंक लगा चुका है॥
पौरुष का सिर सींच निरुपम फोड़ चुका है।
विपद रूप का रक्त विराग निचोड़ चुका है॥

(१४)

दरस वश उदास जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास मित्र सुख मूल नहीं है॥
अनुचित नातेदार बढ़ कुछ मेल नहीं है।
रूँठ गई सब माया सुमति का मेल नहीं है॥

(१५)

मङ्गल का रिपु घोर अमङ्गल भर रहा है।
विषम त्रास के बीज विनाश बखेर रहा है॥
दीन मलीन कुटुम्ब कुगति को कोस रहा है।
सब के कण्ठ अरम्य दरिद्र मसोस रहा है॥

(१६)

दुखड़ों की भरमार, यहाँ सुख-साज नहीं है।
किस का गोरस-भात, मुठीभर नाज नहीं है॥
भटकें चिथड़े धार, धुला पट पास नहीं है।
कुनबे-भर में कौन, अधीर उदास नहीं है॥

(१७)

मक्की, मटरा, मौठ, भुनाय चबा लेते हैं।
अथवा रूखे रोट, नमक से खा लेते हैं॥
सत्तू, दलिया, दाल, पेट में भर लेते हैं।
गाजर, मूली पाय, कलेवा कर लेते हैं॥

(१८)

बालक चोखे खान, पान को अड जाते हैं।
खेल-खिलौने देख, पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
वे मनमानी वस्तु, न पाकर रो जाते हैं।
हाय हमारे लाल, सुबकते सो जाते हैं॥

(१९)

सिर से सकट-भार, उतार न लेगा कोई।
मुझ को एक छदाम, उधार न देगा कोई॥
करुणा सागर वीर, कृपा न करेगा कोई।
हम दुखियों के पेट, न हाय भरेगा कोई॥

(२०)

फूल-फूल कर फूल फली-फल खाने वाले।
व्यञ्जन, पाक, प्रसाद यथारुचि पाने वाले॥
गोरस आदि अनेक, पुष्ट रस पीने वाले।
हाय हुए हम शाक पत्तों पर जीने वाले॥

(२१)

घर में कुरते काट सलूके सिल जाते हैं।
उजरत के दो चार टके यों मिल जाते हैं॥
जब कुछ पैसे हाथ शाम तक आ जाते हैं।
तब उनका सामान मँगा कर खा जाते हैं॥

(२२)

लकड़ कण्डी बीन, बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम अवश्य चला देते हैं॥
पुत्र बचा सब पेट पत्तों से भर देते हैं।
माँग-माँग कर छाछ महेरी कर देते हैं॥

(२३)

ठाकुरजी का ठौर, मँगिनू माँग लिया है।
छोटा-सा खिरपाल पुराना टाँग लिया है॥
गूदड़ कोरे बेच उधारा खपा लिया है।
केवल कोठा एक, उधारा रखा लिया है॥

(२४)

छापर में बिन बाँस, घुने एरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम, घड़ों के खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ दस-बीस, फटे से टाट पड़े हैं।
चकिया की भिड फोड़, पटीले पाट पड़े हैं॥

(२५)

सरदी का प्रतियोग, न उष्ण विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार, न शीतल वास मिलेगा॥
घेर रही बरसात, न उत्तम ठौर मिलेगा।
हा! खँडहर को छोड़, कहाँ घर और मिलेगा॥

(२६)

बादल केहरि-नाद, सुनाते बरस रहे हैं।
चहुँ दिस विद्यु दृश्य, दौड़ते दरस रहे हैं॥
निगल छत्त के छेद, कीच-जल छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेव गढ घोर, प्रलय का तोड़ रहे हैं॥

(२७)

दिया जले किस भाँति, तेल को दाम नहीं है।
अटके मच्छर डाँस, कहीं आराम नहीं है॥
फिसल पडे दीवार, यहाँ सन्देह नहीं है।
कर दे पनियाँढाल, नहीं तो मेह नहीं है॥

(२८)

बीत गई अब रात महा तम दूर हुआ है।
संकट का कुछ ह्रास न चकनाचूर हुआ है॥
आज भयंकर रुद्र रूप उपहास हुआ है।
हा ! हम सबका घोर नरक में वास हुआ है॥

(२९)

सकते हैं मत-पन्थ परस्पर मेल नहीं है।
सत्य सनातन धर्म कपट का खेल नहीं है॥
सुबुध साधु-सत्कार कहीं अवशिष्ट नहीं है।
ठगियों में भिक्षा मात्र उपकरना इष्ट नहीं है॥

(३)

जैसे भारत-भक्त धर्मधारी मिस्टर हैं।
धानदार वकील डाक्टर बैरिस्टर हैं॥
देश धन की भाँति प्रतिष्ठा पा सकते हैं।
क्या वो मुफ्त-से रह कमाई खा सकते हैं।

(३१)

वैदिक सत्य न ज्ञान मान कुछ भी न मिलेगा।
दीन पाप प्रतिकार हवन को घी न मिलेगा॥
मुनि-महिमागार, महा गौरव न मिलेगा।
भोजन वस्त्र समेत, सदा वैभव न मिलेगा॥

(३२)

बपतिस्मा सकुटुम्ब, बिशप से ले सकता हूँ।
धन्यवाद प्रभु गॉड, तनय को दे सकता हूँ॥
धन-गौरव-सम्पन्न, पुरोहित हो सकता हूँ।
पर क्या अपना धर्म, पेट पर खो सकता हूँ॥

(३३)

सामाजिक बल पाय, फूल-सा खिल सकता हूँ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म में मिल सकता हूँ॥
शुद्ध सनातनधर्म, ध्यान में धर सकता हूँ।
हा! बिन भोजन-वस्त्र, कहो क्या कर सकता हूँ॥

(३४)

देश-भक्ति का पुण्य, प्रसाद पचा सकता हूँ।
विज्ञापन से दाम, कमाय बचा सकता हूँ॥
लोलुप लीला भाँति, भाँति की रच सकता हूँ।
फिर क्या मैं कापट्य, पाप से बच सकता हूँ॥

(३५)

जो जगती पर बीज, पाप के बो न सकेगा।
जिस का सत्य विचार, धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि के विपरीत, कुचाली हो न सकेगा।
वह कंगाल कुलीन, सदा यों रो न सकेगा॥

(११)

आज अधम आलस्य असुर से डरना होगा।
उद्यम को अपनाय उपाय न करना होगा॥
मन में भय-संकोच असंगत भरना होगा।
अन्न मिला भरपेट, क्षुधातुर मरना होगा॥

निदाघ-निदर्शन

(दोहा)

काटे माघ कुठार के जिस प्रकार से पाप।
वैसा ही रिपु शीत का मारक सम निदाघ॥

(चौपाई छन्द)

बीते दिन बसन्त ऋतु भागी गरमी अब कोप कर जागी।
ऊपर भानु प्रचण्ड प्रतापी भूपर भभक पावक पापी॥
आतप वात मिले रज अम्बर झाबर झील सरोवर सूखे।
जिन पूरी नदियों में जल है उन में भी कीचड़ दलदल है॥

(२)

अवनी-तल में शीत नहीं है हिमगिरि पै भी शीत नहीं है।
पूरा कुसुम विकास नहीं है, और लहलही घास नहीं है।
गरम-गरम आँधी आती है, झुलझुल बरसाती आती है।
झाँखड़ झाड़ रगड़ खाते हैं आग लगे वन जलजाते हैं॥

(३)

लपकें लट लूँ लहराती हैं, जल-तरङ्ग-सी थहराती हैं।
तृषित कुरङ्ग वहाँ आते हैं, पर न बूँद बन की पाते हैं॥
सूख गई सुखदा हरियाली, हा ! रस हीन रसा कर डाली।
कुतल जवासों के न जले हैं, फूल-फूल कर आक फले हैं॥

(४)

पावक-वाण छिपाकर मारे, हा ! वडवानल फूँक पजारे।
खौल उठे नद, सागर सारे, जलते हैं जलजन्तु विचारे॥
भानु-कृपा न कढे वसुधा से, चन्द्र न शीतल करे सुधा से।
धूप हुताशन से क्या कम है, हाय ! चाँदनी रात गरम है॥

(५)

जगत गरमी मे गरमाया, मिलती कहीं न शीतल छाया।
घमस घुसी तरु-पुंजों में भी, निकले भभक निकुंजों में भी॥
सुन्दर वन, आराम घने हैं, परम रम्य प्रासाद बने हैं।
सब में उष्ण बयार बहती है, घाम, घमस घेरे रहती है॥

(६)

फलने को तरु फूल रहे हैं, पकने को फल झूल रहे हैं।
पर जब घोर घर्म पाते हैं, सब के सब मुरझा जाते हैं॥
हरि-मृग प्यासे पास खड़े हैं, भूले नकुल भुजग पड़े हैं।
कङ्क, शचान, कबूतर, तोते, निरखे एक पेड़ पर सोते॥—

(७)

विधि यदि वापी कूप न होते तो क्या हम सब जीवन खोते।
पर पानी उन में भी कम है, अब क्या करें नाक में दम है॥
कभी-कभी घन छा जाता है धूपाच्छन्न रवि छुप जाता है।
जी जब बादल से झड़ता है, तो कुछ काम चैन पड़ता है॥

(८)

हरित बेलि पौध मन भाये बैंगन काशीफल, फल पाये।
खरबूजे तरबूजे ककड़ी सब ने ढोंग पित्त की पकड़ी॥
इमली के विधु-बाल कटारे आम अपक्व सुस्वादु गुवारे।
सरस फालसे श्यामल गात पे सब ने सुख-साधन जाने॥

(९)

व्यंजन भोजन आदि हमारे पच न मर सकते हैं सारे।
गरम गई जो कम खाते हैं रक्खें तो कम दुख पाते हैं॥
चन्दन में घनसार घिसाया पाटल-पुष्प-पराग घिसाया।
ऐसा कर परिधान बनाये ये भी जलन विदाहक पाये॥

(१०)

दीपक ज्योति जहाँ जगती है चमक चंचला-सी जगती है।
व्याकुल हम न वहाँ जाते हैं जाकर क्या कुछ कर पाते हैं॥
ग्राम-ग्राम प्रत्येक नगर में घूमें चोर साँप घर-घर में।
रुद्र ताप दिनकर के मारे तड़प रहे नर-नारी सारे॥

(११)

भीतर-बाहर से जलते हैं, अकुलाकर पखे झलते हैं।
स्वेद बहे तन डूब रहे हैं, घबराते मन ऊब रहे हैं॥
काल पडा नगरों में जलका, मोल मिले उष्णोदक नल का।
वह भी कुछ घण्टों बिकता है, आगे तनक नहीं टिकता है॥

(१२)

पान करें पाचक जल जीरा, चरते रहें फुलाय कतीरा।
बरफ़ गलाय छने ठंढाई, ओषधि पर न प्यास की पाई॥
बँगलों में परदे खस के हैं, बार-बार रस के चसके हैं।
सुखिया सुख-साधन पाते हैं, इतने पर भी अकुलाते हैं॥

(१३)

अकुला कर राजे महाराजे, गिरि-शृङ्गों पर जाय विराजे।
धूलि उड़ाय प्रजा के धन की, रक्षा करते हैं तन-मन की॥
जितने वकुला बैरिस्टर हैं, वीर-बहादुर हैं मिस्टर हैं।
सुख से कमरों में रहते हैं, गरजें तो गरमी सहते हैं॥

(१४)

गोरे गुरुजन भोग-विलासी, बहुधा बने हिमालय वासी।
कातिक तक न यहाँ न आते हैं, वहीं प्रचुर वेतन पाते हैं॥
निर्धन घबराते रहते हैं, घोर ताप संकट सहते हैं।
दिन भर मुड़ बोझे ढोते हैं, तब कुछ खा पीकर सोते हैं॥

(१५)

खलियानों पर दायँ चलाना, फिर अनाज भूसा बरसाना।
धूप तप किसान करते हैं तो भी गदर नहीं भरते हैं॥
हलवाई मुरली मठियारे धोबी भगत लुहार बिचारे।
नेक न गर्मी से डरते हैं, अपने काम फूँका करते हैं॥

(१६)

हा ! बायसर की आग पजारे झपटे झाब लपक लूँ मारे।
उड़ती भूभल फाँक रहे हैं, जलते इंजन हाँक रहे हैं॥
मातु-ताप तपवावे जिसको यह ज्वाला न जलावे किसको।
व्याकुल जीव समूह निहारे हाय ! हुताशन से सब हारे॥

(१७)

जेठ जगत को जीत रहा है काल विनाशक बीत रहा है।
मच्छर मकड़ मार रहे हैं हाय ! हाय ! हम हार रहे हैं॥
पावक-ज्वाल प्रचण्ड चले हैं पञ्च-राज भी बहुत जले हैं।
बादल का भयमाड़ रहे हैं गरमी की गति रोक रहे हैं॥

(१८)

जब दिन पावस के आवेंगे वारि बलाहक बरसावेंगे।
तब गरमी मरमी पावेगी कुछ तो ठण्डक पड़ जावेगी॥
आह बस आत्मानन्द रवि का ऐसा मारुत है किस कवि का।
शङ्कर कविता हुई न पूरी, जलती सुनती रही अधूरी॥

दिवाली नहीं दिवाला है

(दोहा)

दिया दिवाली का जला, निरख दिवाला काढ़ ।
होली धूलि प्रपंच में, परख पंच की बाढ़ ॥

(सुभद्रा छन्द)

हुआ दिवस का अन्त, अस्त आदित्य उजाला है ।
असित अमा की रात, मन्द आभा उडु-माला है ॥
चन्द्र-मण्डल भी काला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

घोर तिमिर ने घेर, रतौंधा-रङ्ग जमाया है ।
अन्ध अकड़ में तेज, हीन अन्धेर समाया है ॥
न अगुआ आँखों वाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उड़ते फिरें उलूक, उजाड़ू गीदड़ रोते हैं ।
विचरें वंचक चोर, पड़े घरवाले सोते हैं ॥
न किस का टूटा ताला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उमग मोहिनी शक्ति, सुरों को सुधा पिलाती है ।
असुरों को विष-रूप, रसीले खेल खिलाती है ॥
झुका अँखियों का झाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

सबल ग्रहों के चूट, घडाई कहाँ न पाते हैं।
वैदिक दर्प दबोच, वेदियों पर चढ़ जाते हैं॥
डुबा धी नाम उछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गुरुकुलियों को दान, अकिंचन भी दे आते हैं।
पर कगाल-कुमार, न विद्या पढने पाते हैं॥
धनी लडकों की शाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

जननी-पितु की पुत्र, न पूरी पूजा करता है।
अपने ही रस-रङ्ग, भरे भोगों पै मरता है॥
सुमित्रा वनिता वाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ललना ज्ञान विहीन, अविद्या से दुख पाती हैं।
हा! हा! नरक समान, घरों में जन्म बिताती हैं॥
महा माया विकराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

बाधक बाल-विवाह, कुमारों का बल खोता है।
अमर कुलों में हाय, वश घाती विप बोता है॥
बुरा काकोदर पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

अक्षत-योनि अनेक बालिका विधवा होती हैं ।
पामर पतित पंच पिशाचों को सब रोती हैं ॥
न गौना हुआ न चाला है ।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है ॥

रण्डा मदन-विलास नवीनों को दिखलाती हैं ।
करती हैं व्यभिचार अधूरे गर्भ गिराती हैं ॥
अछूता धर्म छिनाला है ।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है ॥

कर-कम्प कर वृद्ध, बालिका कन्या वरते हैं ।
कर मनमाने पाप न अत्याचारी डरते हैं ॥
जरा आरम्भ निकाला है ।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है ॥

राजा धनिक उदार मस्त जीने पै मरते हैं ।
गार गुरु अपनाय प्रशंसा पूजा करते हैं ॥
यही तो मान मसाला है ।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है ॥

ठग्ग ठगक के ठाट, ठिकानों पै यों जगते हैं ।
जनता जन निस्सार पड़ पामरता ठगते हैं ॥
बढ़ाई जिनकी ज्वाला है ।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है ॥

आमिष, चरबी आदि, घने नारी-नर खाते हैं।
पशु-पक्षी दिन-रात, कटाकट काटे जाते हैं॥
बहा शोणित का नाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गाँजा-चरस चढाय, जले जड चाँडू से सारे।
पियें मदकची भग, अफीमी पीनक ने मारे॥
चढी सर्वोपरि हाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गणिका, भडुआ, भाँड़, भटेले मौज उड़ाते हैं।
अवढरदानी सेठ, द्रव्य से पिण्ड छुड़ाते हैं॥
चढी लालों पर लाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सेठ सद्उद्यमशील, पडे माला सटकाते हैं।
अनघ दुअन्नी तीन, सैकड़ा ब्याज उड़ाते हैं॥
कहो क्या कष्ट-कसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

बैरिस्टर, मुख्तार, वकीलों का धन धन्दा है॥
नैतिक तर्क-विलास, न निर्धनता का फन्दा है॥
कमाऊ झगला या लों है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

थाना-पति कुल-वीर न डाकू से भी डरते हैं।
धन जीवन की खैर, हमारी रक्षा करते हैं॥
प्रतापी तौल बिठलाता है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

पटवारी प्रभु रोप किसानों का जी भरते हैं।
मासिक से अतिरिक्त, रसीला चारा चरते हैं॥
हरा प्रत्येक निवाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

ठग विज्ञापन बाँट ठगी का रंग जमाते हैं।
अनुचित सौदा बेच बेच व्यापार कमाते हैं॥
कपट साँचे में ढाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

उन्नति के अवतार, मित्रों का मान बढ़ाते हैं।
भारती कुनबे नाक नाक पै नाम चढ़ाते हैं॥
अहिंसा का मद्य पाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

रहते थे अधिकार, सभी को सुख से जीने दे।
अभिमानम पी काम प्रतापी गोरस पीने दे॥
कहे हा ! बाबू रसाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

सम्पति रही न पास, दरिद्रासुर ने घेरे हैं।
बन्धन के सब ओर, पडे फन्दे बहुतेरे हैं॥
लगा बरछी पर भाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

विचरें मूढ विरक्त, अविद्या को अपनाते हैं।
ब्रह्म बने लघु लोग, कुयोगी पाप कमाते हैं॥
वृथा माला, मृगछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सुर तेतीस करोड़, मिले पर तो भी थोड़े हैं।
पुजते जड़-चैतन्य, मरों के पिण्ड न छोड़े हैं॥
+ पुजापा कहाँ न डाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

घेर-घेर पुर ग्राम, घने घर सूने कर डाले।
करते मन्त्र-प्रयोग, न तोभी मृत्युञ्जय वाले॥
किसी ने प्लेग न टाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

त्राण अनेक अनाथ, गॉड नन्दन से पाते हैं।
कितने ही कुल-वीर, रसूलिल्लाह मनाते हैं॥

+ घर, घूरा, किवाड़, चौकठ, बरतन, कपड़े, पेड़, पत्थर, धातु, क्रब्र आदि आदि मर्यों पर पुजापे चढ़ाये जाते हैं।

हमारा ह्रास निराला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

दयानन्द मुनि-राज मिले थे शंकर के प्यारे।
वे भी कर उपकार हो गये भारत से न्यारे॥
उजाला रजनी-ज्वाला है।
दिया जला कर देख दिवाली नहीं दिवाला है॥

अन्धेरखाता

(साखी)

चन्द्र का सेहरा दिया-सा दमदमाता देख लो।
आग-सा अन्धेरखाता धकधकाता देख लो॥

(सम्बोधनपर गीत)

इस अन्धेर में रे
अन्धी बाजारी चमका लो।

भानु चन्द्रमा तारागण से गुणियों को चमका लो
गदहा रे बकवादी जैसा हंस-कौवा चमका लो।
इ र्भ ध ना चमका लो॥

मोह भवन में ज्ञान-सूर्य का मालिम दरप बुरा लो,
विद्या ख्याति-विहीन जनों का सुयश-सर्वस्व चुरा लो।
इ र्भ अं० ना चमका लो॥

धर्माधार महामण्डल में, अपनी जीत जता लो,
ब्रह्म वीर श्रीदयानन्द को, हारा शत्रु बता लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

भिन्न मतों के वेष निराले, पन्थ अनेक बना लो,
धर्म सनातन के द्वारा यों, कुनबा घेर घना लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

मन में श्रद्धा बुद्धदेव की, धींग धमोड़ धसा लो,
मौखिक शब्दों में शंकर का, प्रेम पवित्र बसा लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

झूँठा सब संसार बता दो, सत्य नाम अपना लो,
मायावाद सिद्ध करने को, रज्जु, सर्प, सपना लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

'सोहमस्मि' से वेद-विरोधी, मायिक मन्त्र सिखा लो,
परम तत्व भूले जीवों को, ब्रह्म स्वरूप दिखा लो।
ह० अ० अं० चा० चमका लो॥

कूट कल्पना के प्रवाह में, वाद-विवाद बहा लो,
कर्महीन केवल बातों से, जीवनमुक्त कहा लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

निर्विकार अद्वैत एक में, द्वैत-विकार मिला लो,
मायामय मिथ्या प्रपञ्च के, सब को खेल खिला लो।
ह० अ० अ० चा० चमका लो॥

जन्म-कुण्डली काढ जाल की, दिव्य आग दहका लो,
सेट खरे-खोटे बतला के, धनिया को बहका लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

साधु कहालो भण्ड-भीड़ में, सण्ड-समूह सटा लो,
रोट खाय पाखण्ड-फण्ड के, लण्ठो, लहर पटा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

मुंज-मेखला बाँध गले में, कठ-कण्ठे लटका लो,
मादकता की साधकता में, योग-ध्यान अटका लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

अपने अन्यायी जीवन की, धुँधली ज्योति जगा लो,
निन्दा करो महापुरुषों की, ठगलो और ठगा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

भारत की भावी उन्नति का, प्रण से पान चबा लो,
चन्दा लेकर धर्म-कोष को, सब के दाम दबा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

हाँ उपदेशामृत पीने को, श्रोता वदन उबा लो;
शुद्ध सत्य-सागर में सारे, भ्रम-सन्देह डुबा लो।
इ० अ० अ० चा० चमकालो॥

माता-पिता और गुरु, पत्नी, सब से शुभ शिक्षा लो,
जामदग्न्य, प्रह्लाद, चन्द्र की, भाँति सुयश-भिक्षा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

विद्या-हीन अंगना-गण के, उन्नत अङ्ग नवा लो,
पिसवा लो खाना पकवा लो, थकने गीत गवा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

विधवा-दल के दुष्कर्मों से, घर का मान घटा लो,
हत्यारे बनकर पञ्चों में, कुल की नाक कटा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

खेलो जुआ हार धन-दारा, मार कुयश की खा लो,
नल की पदवी से भी आगे, धर्मपुत्र-पद पा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

मदिरा, ताडी, भंग, कसूमा, पीलो अमल खिला लो,
चूँसो धुँआँ चरस, गाँजे में, चाँडू, मदक मिला लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

सोंध सड़े गुड़ में तम्बाकू, घान घने कुटवा लो,
आदर-मान बढे हुक्के का, भारत को लुटवा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

होली के हुल्लड़ में रसिको, रस के साज सजा लो,
हिन्दूपन के सभ्य भाव का, ढिल्लड ढोल बजा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

वैदिक वीरो, अन्ध-यूथ में, तुम भी टाँग अड़ा लो,
चाँट बड़ाई का बढ़िया से, बढ़िया और बढ़ा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो॥

हाय! अजानों के दगल में, झूँठी ठमक ठसालो,
सिद्ध प्रतापी कविराजों पै, हँस लो और हँसा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

वक्ताजी शुभ कर्म कथा पै, बस हाँमी भरवा लो,
पर देखें सब श्रोताओं से, पचयज्ञ करवा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

शकरजी पहले पापों का, पलटा आप चुका लो,
औरों से क्यों अटक रहे हो, अपनी ओर थुका लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

वोट-भिक्षा

(दोहा)

शकर से होना नही, निष्ठुर खाल खसोट।
धर्म कमालो वोटरो, देकर मुझ को वोट ॥

(कवित्त घनाक्षरी)

शकर की भाँति न घृणा से धारो रुद्ररोष,
देश के दुलारे बनो प्रेमामृत पीजिए।
द्वारे द्वारे डोलता हूँ लेके साथियों को साथ,
हा-हा खड़ा खाता हूँ पुकार सुन लीजिए ॥

उपसंहार

अर्थात पूर्णोद्गास का अन्तिम अश

जीवन-काल

(दोहा)

जाता है टिकता नहीं, अस्थिर काल कराल।
देखो, इस की दौड में, चुके न किसकी चाल ॥

(गीत)

जीवन बीत रहा अनमोल,
इस को कौन रोक सकता है।

चलता काल टिके कब हाय, सटके सबको नाच नचाय,
लपका लपके किसे न खाय, अस्थिर नेक नहीं थकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

हायन, मास, पक्ष, मित, श्याम, तैथिक मान, रात, दिन, याम,
भागें घटिका, पल, अविराम, क्षण का भी न पैर पकना है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सरके वर्तमान बन भूत, गति का गहै अनागत सूत,
त्रिकली द्रुतगामी रवि-दूत, किस की छाक नहीं छकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सब जग दौडे इस के साथ, लगता हा ! न विपल भी हाथ,
सुनलो रङ्क और नरनाथ, शङ्कर वृथा नहीं बकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

भारी भक्ति-भाव से भिखारी माँगता है भीख,
सुकर पसारिये कृपालु कृपा कीजिए।
कोट दान देके दानी कोटरो करोरो पुण्य
मेरा जन्म-जीवन सफल कर दीजिए॥

पंच-फैसला

(दोहा)

बस सिम कीनी गुरु मन्त्र सुन सई बात।
जैविस्त मकुआ भर्के बडपदिया को मात॥

(मरहठी छंद)

हिन्दू मिल पौंगा पथ कर्वै मत लिखे जाने।
हम हिन्दू न मसत मारिया मत को मान॥
को बिसार कुल रीति बिगारैं गैल पुरानी।
ठाकुर पकर चौबे करैं रच्छा ठकुरानी॥
मर्वे मनमानी माया मिले भौं सागर भरपूर हो।
तू बको संकर जात ने, चोस ममसठे पूर हो॥

चित्रोल्लास की विचित्रता

(दोहा)

पचराज के तेज का, जिसमें बसे विलास।
पूरा हो सकता नहीं, यह विचित्र उल्लास॥

जलों को जेठ जलाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥

(आषाढ)

दामिनि को दमकाय, दहाड़े धाराधर धाये।
मारुत ने झकझोर, झुकाये, झूमे झर लाये॥
लगी आषाढ बुझाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥

(श्रावण)

गुल्म, लता, तरु पुञ्ज, अनूठे दृश्य दिखाते हैं।
बरसे मेह विहङ्ग, विलासी मङ्गल गाते हैं॥
झुलाता श्रावण भाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥

(भाद्रपद)

उपजे जन्तु अनेक, भिल्लारे, झील, नदी, नाले।
भेद मिटा दिन रात, एक से दोनों कर डाले॥
मघा भादों बरसाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥

(आश्विन)

फूल गये सर, काँस, बुढ़ापा पावस पै छाया।
खिलने लगी कपास, शीत का शत्रु हाथ आया॥
कृषी को क्वार पकाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥

काल का वार्षिक विकास

(दोहा)

तीन तनावों से बना जिस का अस्थिर वास।
हाँक रहा संसार को अविरामी वह काल॥

(मुक्ता छन्द)

सविता के सब ओर, मही माता चकराती है।
घूम घूम दिन-रात महीना वर्ष बनाती है॥
काल को अन्त न आता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(चैत)

छोड़ कुसुम प्राचीन नव दल द्रुमों में धारे।
दल विनाश, विकास रूप रूपक प्यारे प्यारे॥
द्रुमों चैत दिखाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(वैशाख)

सूख गये सब खेत झुलसी सारी हरियाली।
गहरी तीव्र निदाघ अग्नि रूखी कर डाली॥
धूलि वैशाख उड़ाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(ज्येष्ठ)

झील सरोवर सूख पसार नदियों के सोते।
व्याकुल फिरें कुरङ्ग प्यास मृगतृष्णा पै रोते॥

फाल्गुन फाग खिलाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥ १३॥

(अधिमास)

विधु से इन का अब्द, बड़ाई इतनी लेता है।
जिस का तिगुना मान, मास पूरा कर देता है॥
वही तो लौंद कहाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥ १४॥

(कवि का पछतावा)

किया न प्रभु से मेल, करेगा क्या मन के चीते।
अबलों बावन वर्ष, वृथा शङ्कर तेरे बीते॥
न पापों पै पछताता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है॥ १५॥

पूर्णोल्लास का भावार्थ

(दोहा)

अन्धकार-अन्धेर का, अब न रहेगा पास।
राग-रत्न का पारखी, परख पूर्ण उल्लास॥

शुभम्

(कार्तिक)

शुद्ध हुए जल-वायु सुखा आकाश खिले तारे।
बोये विविध अनाज, लगे अङ्कुर प्यारे-प्यारे॥
दिवाली कार्तिक लाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(मार्गशीर्ष)

शीतल बहे समीर, सबों को शीत सताता है।
हायन भर का भेद जिसे दैवज्ञ बताता है॥
अगहायन सुख पाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(पौष)

स्पष्ट ओस तुषार पड़े जम जाता है पानी।
कट कर आवें धान भरी जल-धारों की नामी॥
पुजारी पौष न भाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(माघ)

हुआ मकर का भग्न भरी सरसी अम्बा बौरे।
विकसे सुन्दर फूल मकरन्द लीले धीरे धीरे॥
माघ मधु को अपनाता है।
हा! इस अस्थिर काल चक्र में जीवन जाता है॥

(फाल्गुन)

सन पके अब आँख हरा न वनति की गोली।
धन मिला भरपूर, प्रजा के मन भामी होली॥